साग विदुर गृह खायो

(खण्ड काव्य)

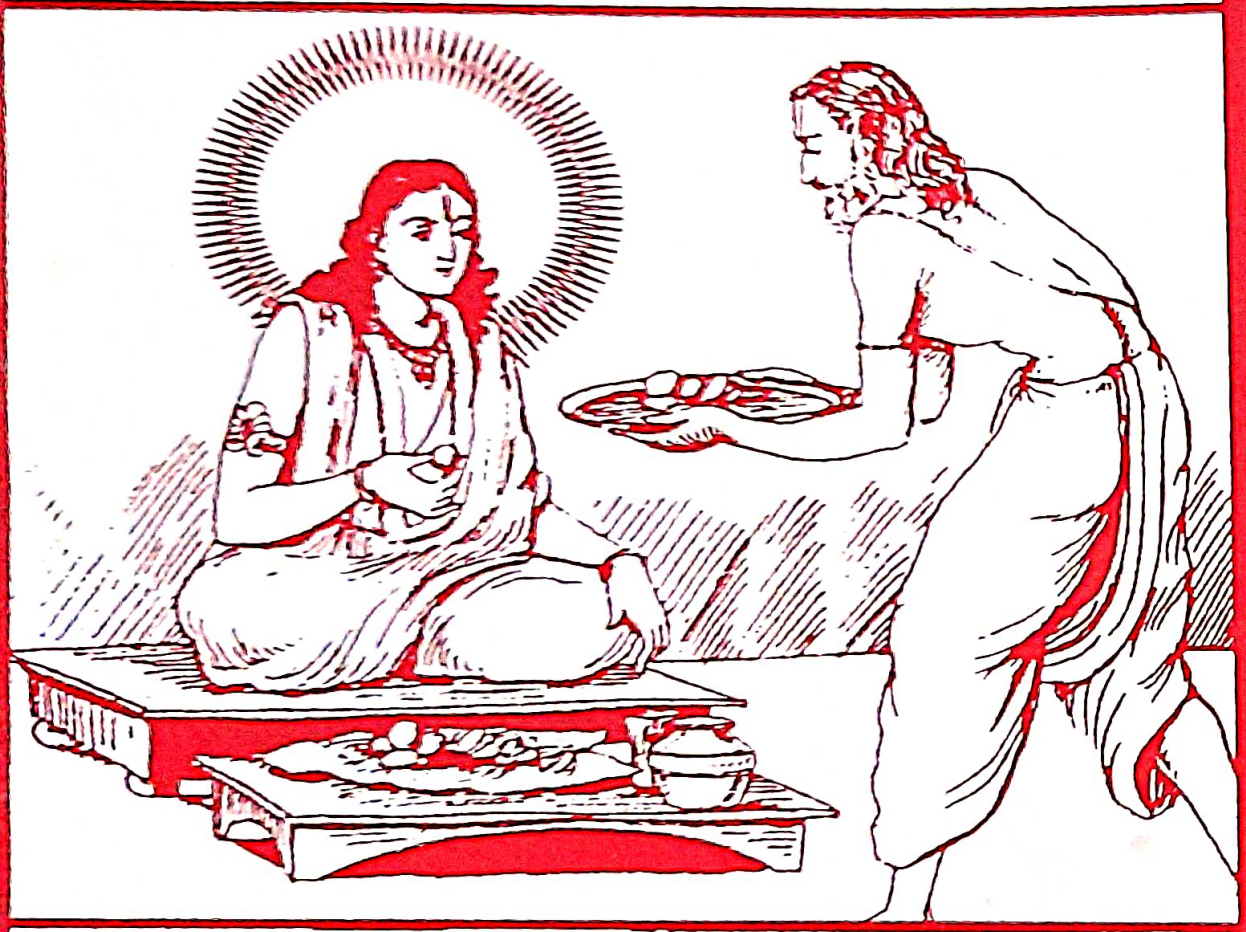

रचयिता

राजभवन सिंह

[एम० ए०]

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना द्वारा प्रदत्त अनुदान से प्रकाशित

साग विदुर गृह खायो

(खण्ड काव्य)

रचयिता

राजभवन सिंह

[एम० ए०]

कृति	साग विदुर गृह खायो
रचयिता	राजभवन सिंह, एम॰ ए॰
प्रथम संस्करण	जनवरी, 2005
मूल्य	50/- रुपये
प्रकाशन	लेखकाधीन
मुद्रक	गौतम प्रिंटर्स न्यू बंगाली टोला, पटना- 1

भूमिका

प्राचीन काल की कथा है। कौरव और पाण्डव में युद्ध की तैयारियाँ हो रही थीं। पाण्डवों की ओर से शान्ति का प्रस्ताव लेकर स्वयं कृष्ण हस्तिनापुर पधारे थे। दुर्योधन ने राजसी समारोह के साथ भगवान का स्वागत-सत्कार किया। पर, उन्होंने दुर्योधन के मिष्टान्न को ठुकराकर विदुर के घर साग खाने को विशेष महत्व प्रदान किया। भक्त और भगवान के बीच सहज रूप से घटित होनेवाली इस कथा को भक्ति-भावना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। युग-युग में भक्त कवियों ने अपनी सरस रचनाओं के द्वारा इसे उजागर किया है। आज भी इसमें वही ताजगी और आकर्षण हैं जो कभी किसी काल में रहे होंगे। वास्तव में भक्त और भगवान का सम्बन्ध ही ऐसा है कि वह कभी पुराना नहीं पड़ता। उसमें नित्य नवीनता बनी रहती है। अतः उसकी रमणीयता शाश्वत है। कवि राजभवन सिंह की प्रस्तुत काव्य कृति उसी पुरातन कथा को नए रूप में दुहराती है।

किन्तु किसी पुराने कथानक को वर्तमान की भाषा में ढाल लेना एक बात है और उसी को अपने समय की प्रासंगिकता के अनुकूल रच देना बिल्कुल अलग चीज है। इस दृष्टि से जब हम इस पुस्तक का अवलोकन करते हैं तब पाते हैं कि कवि का ध्यान-केन्द्र जितना भक्ति-भावना की ओर उन्मुख है उतना युगीन प्रासंगिकता की ओर नहीं। किन्तु मूल कथा में स्वतः ऐसी प्रासंगिकता बीज रूप से विद्यमान है। उसे कहीं से आयात नहीं करना है। थोड़ा-सा कथा-विन्यास कर देने से वह विकसित हो जा सकती थी। महात्मा विदुर विद्वान, सदाचारी एवं नीतिकुशल होते हुए भी दासी-पुत्र थे। शूद्र कुलोत्पन्न होने के कारण तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में वे उपेक्षा के पात्र थे। भगवान ने उनका आतिथ्य स्वीकार कर उस समय के एक अत्यन्त प्रतिष्ठित उच्चवर्णोत्पन्न राजन्यवंश के अहंकार-दीप्त मुकुट पर पाद-प्रहार

किया और नीच वंश के एक सज्जन पुरुष का आदर बढ़ाया। भक्ति-भावना के साथ सामाजिक न्याय का एक अनमोल प्रसंग है। किन्तु राजभवन सिंह ने विशुद्ध भक्त कवियों की भाँति भक्ति-भावनाओं में ही विशेष रुचि दिखलाई है, जैसा कि वह अपने ग्रंथ के प्रारम्भ में ही लिखते हैं-

जीवन उनका ही सफल,
जो प्रभु में लवलीन ।
अन्य सभी तो व्यर्थ हैं,
प्रभु-पद-प्रीति-विहीन ।।

अतः उसमें यदि किसी पाठक को प्रासंगिकता की गन्ध न मिले तो हताश होने का कोई कारण नहीं, क्योंकि चमेली का फूल अगर गुलाब की खुशबू नहीं देता है, तो मत दे। हम उसकी उसी सुगन्ध पर राजी हो जाएँगे, जो वह हमें दे रही है।

कुछ भी हो, भक्ति का प्रस्तुत प्रसंग इतना अनूठा है और मीठा भी कि जिसका जवाब नहीं। महात्मा विदुर की अनुपस्थिति में भगवान उनके घर पधारे हैं। विदुरानी स्नान-घर में वैसी ही नंगी, बदहवास और प्रेमानन्द-विभोर भगवान के आगे पहुँचती है, आसन पर बिठलाती है, और बेसुधि, बेखुदी की हालत में उन्हें केले का भोग लगाती है - कैसे खिलाती है कि छिलके तो भगवान को देती है और गूदा कूड़े में डाल देती है। मगर धन्य हैं प्रभु ! हँस-हँसकर छिलके ही खाए जाते हैं और सराहे जा रहे हैं, वाह ! कितना स्वादिष्ट है ! कितना मीठा ! अरे प्रभो ! मीठा क्या खाक रहेगा ! मीठे तो तुम स्वयं हो, जिसके स्पर्श से केले का छिलका क्या, घास का तिनका भी रसमलाई वन जाए ! और विदुरानी जैसा पागलपन तो सम्राटों के सौभाग्य का पात्र हो जाए ! अन्त में कवि राजभवन सिंह इस उक्ति के साथ अपनी काव्य-कृति का समापन करते हैं -

जीवन का फल है प्रेम,
और प्रभु की प्राप्ति है उसका फल ।
है सार यही जीवन का,
जीवन प्रेम-भक्ति से हुआ सफल ।।

इस प्रकार की रचना साहित्य में प्रसादात्मक कोटि के अन्तर्गत आती है और सद्‌वृत्तिमूलक समझी जाती है । अत: छन्द या भाषा का विचार उसमें गौण रहता है । यों भी आजकल छन्द या भाषा की प्राय: उपेक्षा ही की जाती है । पहले भी साहित्य जगत में एक उक्ति का कथन होता था कि "भाव अनूठो चाहिए, भाषा कोऊ होय ।"

संत-भक्त कवियों ने अपनी साधु-भाषा में इस उक्ति को चरितार्थ किया है ।

राजभवन सिंह ने एक भक्त का हृदय पाया है और उसी भावना से प्रेरित होकर इस काव्य की रचना की है ।

आशा है, भावुक भक्त हृदय इसका स्वागत करेंगे और भगवान कृष्ण की तरह प्रेम से परोसे हुए इस साग का भी उसी अनुराग से ग्रहण करेंगे जिसके वशीभूत होकर केले का छिलका भी अमृत का स्वाद देने को प्रस्तुत हो गया ।

पटना,
9 जुलाई, 1991

- आरसी प्रसाद सिंह

भूमिका

कविता लिखना कठिन कर्म है और प्रबन्ध कविता लिखना तो और भी कठिन। इस कठिन काम में हाथ डाल कर श्री राजभवन सिंह ने जान-जोखिम का काम किया है, इसे साफ-साफ कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है। आज जब नाटक की जगह एकांकी और उपन्यास की जगह लघु कथाएँ ले रही हैं और काव्य के क्षेत्र में गीतों और गजलों के गमले सज रहे हैं तो ऐसे में प्रबन्ध काव्य के प्रासादों पर चढ़ना निश्चय ही बड़ी साहसिकता का काम है। श्री राजभवन सिंह इस अर्थ में बड़े ही साहसी हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

एक सुदीर्घ समय से वे इस पथ पर चल रहे हैं और उन्होंने अब तक चार प्रबन्ध काव्यों की रचना की है- द्रौपदी, भीष्म-प्रतिज्ञा, देवयानी और दमयन्ती। यह **'साग विदुर गृह खायो'** उनका नवीनतम प्रबन्ध काव्य है।

प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य की रचना कुल मिलाकर पाँच सर्गों में हुई है। प्रबन्ध काव्य का प्रारम्भ परम्परागत शैली में ईश्वर-वन्दना से हुआ है -

जीवन उनका ही सफल, जो प्रभु में लवलीन।
अन्य सभी तो व्यर्थ हैं, प्रभु-पद-प्रीति-विहीन॥

शुरू में ही पता चल जाता है कि **'साग विदुर गृह खायो'** का कवि आसक्त नहीं, विरक्त है, वह भगवद्भक्त है। वह भक्त पहले है, कवि पीछे।

पूरे प्रबन्ध काव्य को पढ़ जाने पर ज्ञात होता है कि प्रस्तुत रचना प्रबन्ध काव्य है, मुक्तक नहीं। मुक्तक में किसी विषय पर कवि अपने भाव-विचारों को मुक्तकण्ठ से व्यक्त करता है, उसे किसी कहानी (कथावस्तु) घटना या चरित्र का आश्रय नहीं लेना पड़ता। परन्तु प्रबन्ध काव्य का कवि किसी घटना या कथावस्तु के बिना एक कदम आगे बढ़ ही नहीं सकता। प्रस्तुत काव्य में

कवि ने एक कथावस्तु ली है और पाँच सर्गों में उसे कहा है । इसमें घटनाएँ हैं, चरित्र हैं और इन सब का एक सिलसिला है- क्रम-बन्धन है - अतः यह एक प्रबन्ध काव्य है ।

इस प्रबन्ध काव्य की कथावस्तु महाभारत से ली गई है । महाभारत के बारे में प्रसिद्ध उक्ति है कि जो महाभारत में नहीं है, वह भारत में ही नहीं है । सच है, हिन्दी क्या, भारत की अन्यान्य भाषाओं में भी लिखित साहित्य का विपुलांश महाभारत की ही कथोपकथाओं एवं चरित्र पर आधारित है । द्रौपदी, भीष्म-प्रतिज्ञा, देवयानी और दमयन्ती के कवि श्री राजभवन सिंह भी, कहना न होगा कि महाभारत से ही अधिक प्रेरित और प्रभावित हुए हैं । प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य भी इस सन्दर्भ में विशिष्ट उदाहरण है । उल्लेखनीय है कि कवि ने महाभारत की कथावस्तु को ज्यों-का-त्यों अंकित किया है, उसमें कुछ भी जोड़ने-घटाने का दुस्साहस नहीं किया है । महाकवि हरिऔध या मैथिलीशरण जी गुप्त ने प्राचीन या पौराणिक प्रसंगों में भी आधुनिकता का समावेश किया है, यथा प्रिय-प्रवास या साकेत में, परन्तु 'साग विदुर गृह खायो' के कवि श्री राजभवन सिंह ने ऐसा कुछ न करके, विशुद्ध परम्परावादिता का परिचय दिया है । आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि "किसी पौराणिक स्वरूप को मनमाने ढंग से विकृत करना हम भारी अनाड़ीपन समझते हैं"- (हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृष्ठ-615-पं० रामचन्द्र शुक्ल) । लेकिन श्री राजभवन सिंह ने ऐसा नहीं किया है और इस दृष्टि से वे खरे उतरते हैं ।

प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य की कथावस्तु में आधुनिकता नहीं, पौराणिकता है । कवि का दृष्टिकोण स्वच्छन्दतावादी नहीं, परम्परावादी है । पूरी कथावस्तु महाभारत के महान चरित्र महर्षि विदुर से सम्बद्ध है । विदुर के सम्बन्ध में महाभारत में जो बातें वर्णित हैं, कवि ने उन्हें ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है । विदुर का जन्म, विदुर द्वारा हमेशा न्याय का पक्ष-ग्रहण करना, पाण्डवों को लाक्षागृह में जलने से बचाना, विदुर द्वारा पाण्डवों को हस्तिनापुर लिवा लाना, द्यूत-क्रीड़ा के लिए उन्हें बुलाने के लिए खाण्डव वन में जाना, विदुर द्वारा द्रौपदी को भरी सभा में लाए जाने का विरोध करना और अन्त में विदुर के घर भगवान श्रीकृष्ण का पधारना और विदुर तथा विदुर-पत्नी द्वारा

भगवान श्रीकृष्ण का भाव-विह्वल स्नेहमय स्वागत किया जाना- आदि सारी घटनाएँ बड़ी खूबसूरती के साथ सिलसिलेवार लाई गई हैं । कोई भी घटना न निरर्थक है और न फालतू । इन घटनाओं से कथावस्तु का विकास हुआ है, अथवा चरित्रों पर प्रकाश डाला गया है । विशेषत: ये तमाम घटनाएँ विदुर के महच्चरित्र को उद्घाटित करने के लिए संजोयी गई हैं । अत: कथानक-संगठन या कथावस्तु-योजना में कवि पूर्णतया सफल हुआ है ।

इसी प्रसंग में कवि ने दृश्य-वर्णन भी किये हैं और दृश्य-योजना, ठीक ही कहा गया है कि "प्रबन्ध-काव्य के वस्तु-विधान का एक महत्वपूर्ण अवयव है ।" कवि ने आरम्भ में माण्डव्य ऋषि और उनके आश्रम में आए दस्युओं का वर्णन किया है -

हैं चोरी के सामान यहाँ बिखरे, हमको सन्देह बड़ा ।
यह चोरों का सरदार नयन मूँदे बैठा है, देख जरा ॥

इस दृश्य-वर्णन द्वारा विदुर के पूर्व जन्म के इतिहास पर प्रकाश डालना कवि का लक्ष्य है । तृतीय सर्ग में कवि ने हस्तिनापुर के उस अवसर का वर्णन किया है जब पाण्डव द्रौपदी से विवाहोपरान्त राजधानी में लौट रहे हैं -

सड़कों पर फूल बिखेरे थे, जल का छिड़काव सुगन्धित था ।
सारा पुर दिव्य धूप-गन्ध से सुमन-सेज-सा सुरभित था ॥
ध्वजाएँ फहराती थीं, ऊँचे भवनों पर थे पुष्प-हार ।
नाना प्रकार के वाद्यों से भी पुर का बढ़ता था सिंगार ॥

इस दृश्य-योजना द्वारा कवि ने पाण्डवों की लोकप्रियता की झांकी दी है । आशय यह है कि प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में दृश्य-योजना भी साभिप्राय और प्रसंगानुकूल है । कविवर श्री राजभवन सिंह को वर्णन की अद्भुत सामर्थ्य प्राप्त है ।

चरित्र-चित्रण प्रबन्ध-काव्य का अन्य महत्वपूर्ण अंश है और यह प्रबन्ध काव्य ही है जहाँ कवि के जीवन की अनेक परिस्थितियों के बीच अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण या शील-निरूपण करने का पर्याप्त अवसर मिलता है। प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य में वैसे तो कई चरित्र आए हैं - धृतराष्ट्र, कर्ण,

कुन्ती, द्रौपदी, दुर्योधन, शकुनि आदि, परन्तु कवि का मुख्य उद्देदय विदुर के चरित्र का गौरव-गान करना है। अतः अवसर मिलने पर भी कवि ने अन्य चरित्रों को चलता कर दिया है। प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य के धृतराष्ट्र, कर्ण, कुन्ती, द्रौपदी, दुर्योधन, शकुनि आदि सारे चरित्र महाभारत के अनुरूप हैं। कवि ने उनके चरित्र के साथ जोड़-तोड़ करने का कोई प्रयास नहीं किया है। लगता है, महाभारत के ही धृतराष्ट्र, कर्ण, कुन्ती, द्रौपदी, दुर्योधन, शकुनि आदि एक बार फिर से प्रस्तुत-प्रबन्ध काव्य के पृष्ठों में पुनरूज्जीवित हो उठे हैं। चरित्रांकन में संवाद-शैली अपनाने के कारण स्वाभाविक है कि चरित्र बड़े ही सजीव हो उठे हैं। जैसे श्रीकृष्ण का चरित्र इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है -

मैं जान रहा हूँ मुझसे तुमको जरा प्रेम का भाव नहीं ।
मैं हूँ न विपद में, मेरे मित्रों का भी यहाँ अभाव नहीं ॥
तू मुझे दिखाता राजभोग, मुझको कुछ उसकी चाह नहीं ।
मैं तो भावों का ग्राहक हूँ, भोगों की कुछ परवाह नहीं ॥

फिर भी कवि का मूल और मुख्य उद्देश्य जैसा कि प्रबन्ध काव्य के शीर्षक से ही स्पष्ट है महर्षि विदुर का चरित्रांकन करना है और इसमें कवि ने अपनी पूर्ण प्रतिभा को व्यय किया है। कवि ने महाभारत के आधार पर विदुर की चरित्रगत विशेषताओं का उद्घाटन किया है। ये विदुर साक्षात् धर्मराज के अवतार थे। वे लोगों को शील-मर्यादा की शिक्षा देने आए थे। माण्डव्य ऋषि के शाप के परिणाम-स्वरूप धर्मराज को पृथ्वी पर देहधारण करना पड़ा था। महर्षि व्यास के पुत्र थे वे जो एक दासी की कोख से उत्पन्न हुए थे। विदुर बचपन से ही सात्विक प्रकृति के थे। उन्होंने दुर्योधन को, और अन्य कौरवों को पाण्डवों के प्रति स्नेहशील होने और न्यायसंगत व्यवहार करने की सलाह दी। विदुर ने ही लाक्षागृह में जल जाने से पाण्डवों को बचाया। समय-समय पर उन्होंने महाराज धृतराष्ट्र को भी समझाया। द्रौपदी से पाण्डवों के विवाहोपरान्त उन सबको हस्तिनापुर लिवा लाने के लिए विदुर ही गए। पाण्डवों को खाण्डव वन का राज्य दिलाया। वे नहीं चाहते थे कि द्यूत-क्रीड़ा हो। फिर भी द्यूत-क्रीड़ा के छल से दुर्योधन जब पाण्डवों का सारा धन-वैभव हड़प बैठा और उसने उन पाण्डवों की प्रिया-पत्नी और कुल की गौरव लक्ष्मी

द्रौपदी को भरी सभा में निर्वस्त्र करना चाहा तो विदुर की निर्भीक वाणी फूट पड़ी –

है मौत नाचती तेरे सिर, पर तुमको इसका पता नहीं ।
इस कारण तू मेरी हितकर बातों को भी सुनता नहीं ॥
कुरुकुल को नष्ट करायेगा, रे दुष्ट, राज ये जायेगा ।
तू मेरी बातें नहीं मान कर, अंत काल पछतायेगा ॥

जिस सभा में सारे सभासद हों, द्रोण जैसे आचार्य और भीष्म पितामह जैसे महाबली, महात्यागी हों, स्वयं समुपस्थित महाराज धृतराष्ट्र हों, और किसी स्त्री, साधारण स्त्री क्या, अपने ही कुल की वधू (द्रौपदी) को नग्न किए जाते देखकर भी कोई कुछ न बोले-वास्तव में यह बड़े कलंक की बात है। ऐसे में, विदुर की निर्भीक वाणी न केवल उनके उदात्त चरित्र को गौरवान्वित करती है, बल्कि संकेतित करती है कि वैसे समय में भी भारत की शील-मर्यादा मर नहीं गई थी, मर्यादा ने अपना मुँह जरूर खोला था। यह बात अलग है कि मर्यादा को सत्ता-सम्पदा की अहम्मन्यता मानती ही कब है ? क्या आज भी हम नहीं देख रहे हैं कि जो सत्ता में हैं, जिनके पास शक्ति है, वे नियम-कानून को लात मार रहे हैं ! अतः कविवर राजभवन सिंह के विदुर का आज के सन्दर्भ में भी बड़ा ही महत्व है। काश, आज के सत्तान्ध नेता और शक्ति से उन्मत्त पदाधिकारी विदुर-वाणी सुन सकते !

विदुर के चरित्र को गौरवान्वित करने में श्रीराजभवन सिंह के कवि को निश्चय ही पूर्ण सफलता मिली है।

आज हम घोर भौतिकतावादी युग में जी रहे हैं जिसमें हर चीज को, हर बात को पैसे के तराजू पर तौला जाता है। स्नेह, अपनापन, प्यार, आदर ये तमाम बातें तेजी से भुला दी गई हैं। आज पद-पैसे की प्रतिष्ठा है, कुर्सी की इज्जत है, और प्रेम-पवित्रता, एकनिष्ठता, वफादारी आदि बातें कोरी भावुकता समझी जाती हैं। वैसे लोगों को भावुक कहकर उनका मजाक उड़ाया जाता है। किन्तु इससे विनाश पास आएगा, अशान्ति होगी, महाभारत होता रहेगा और मानवता चीत्कार करती रहेगी। विदुर के चरित्र के माध्यम से कविवर राजभवन सिंह ने स्नेह-समर्पणशीलता का सन्देश दिया है। शक्ति के

अन्ध पुजारी इस युग को कवि ने भक्ति का सन्देश सुनाया है ।

जीवन का फल है प्रेम, और प्रभु की प्राप्ति है इसका फल ।
है सार यही जीवन का, जीवन प्रेम-भक्ति से हुआ सफल ॥

अतः प्रस्तुत प्रबन्ध काव्य का शीर्षक भी 'साग विदुर गृह खायो' बड़ा ही सटीक है।

प्रबन्ध काव्यों की पंक्ति में प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य का इसलिए स्थान होगा कि मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ-वध' और 'पंचवटी' जैसे प्रबन्ध-काव्यों की परम्परा में यह लिखा गया है और उस गौरवशाली परम्परा में होना भी कम गौरव की बात नहीं है।

– डॉ॰ दीनानाथ 'शरण'

14 मार्च, 1986
दरियापुर गोला,
बाँकीपुर, पटना-800 004

स्वकथन

हर लम्हा मेरे चंचल मन के अरमान बदलते रहते हैं ।
किस्सा तो वही फर्सूदा है, उन्वान बदलते रहते हैं ॥

महाभारत और भागवत महापुराण मेरे जीवन के आदिकाल से ही मेरे अध्ययन, चिन्तन और मनन के विषय रहे हैं। इन महा ग्रन्थों के अध्ययन से मुझे अपने काव्य-विषयों के लिए साम्रगियाँ मिलती रही हैं। भक्तवर विदुर का आख्यान भी महाभारत से ही लिया गया है। उनकी सर्वहितकारिणी प्रकृति और परोपकार की वृत्ति ने तो जैसे मुझे सम्मोहित ही कर दिया है।

आज इस गम्भीर अनास्था के युग में सन्तों का चरित ही मानव को शान्ति प्रदान कर सकता है। भौतिकवाद में आकण्ठ-निमग्न मानव प्रभु के चरणों का आश्रय ग्रहण कर ही उबर सकता है। विदुर का चरित इसी दिशा की ओर इंगित करता है। मैं तो घूम-फिरकर कृष्ण-चरित पर ही आ जाता हूँ। फिर 'जहाज के पंछी' की तरह यहीं जम गया। कृष्ण-भक्ति ही मेरे जीवन का सर्वस्व है। भगवान श्यामसुन्दर की भक्तवत्सलता का यह रंग यदि किसी को आकृष्ट कर सका तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

जिन्दगी तेरे तसव्वुर से अलग रह न सकी ।
नग्मा कोई हो मगर साज सही काम आया ॥

राजभवन सिंह
पोस्टल पार्क, बुद्धनगर,
पथ सं॰ - 2, पटना - 1

15-3-85

प्रथम सर्ग

दोहा- जीवन उनका ही सफल, जो प्रभु में लवलीन ।
अन्य सभी तो व्यर्थ हैं, प्रभु-पद-प्रीति विहीन ॥

थे विदुर महामति ऐसे ही कि प्रभुमय था जिनका जीवन ।
वे सदा अहिंसा, धर्म, सत्यता का करते रहते पालन ॥
वे थे अवतार धर्मराज के, एक तपी ने दिया शाप ।
इस कारण तन धारण कर आये धर्मराज धरणि पर आप ॥
प्राचीन काल में माण्डव्य नामक एक बड़े तपस्वी थे ।
वे धृतिमान, धर्मज्ञ, सत्यपालक, सदगुणी, यशस्वी थे ॥
वे एक समय निज आश्रम में थे मौनव्रत करके धारण ।
तब ही चोरी का माल लिए आए आश्रम ढिग दस्युगण ॥
उन चोरों का पीछा करते आये राजा के पहरू जब ।
वे दस्यु माल सब आश्रम के ही निकट त्यागकर भागे सब ॥
उस राजा के सैनिकगण ऋषि के पास पहुँच करके बोले ।
"हे द्विजराज, दस्युगण भागे गए किधर, भेद खोलें ॥
हम पीछा करते आए हैं, वे गए न होंगे दूर अभी ।"
सुनकर इतना भी मौन रहे वे ऋषि, ये बोले सैन्य तभी ॥
"हैं चोरी के सामान यहाँ बिखरे, हमको सन्देह बड़ा ।
यह चोरों का सरदार नयन मूँदे बैठा है, देख जरा ॥
यह बगुला भगत न बोल रहा, ले चलो नृप के पास इसे ।"
उन ऋषि को भी पहचान सके, ऐसा था उनमें ज्ञान किसे ॥
जिसका जैसा स्वभाव नियत सबको वह वैसा जान रहा ।
यह तो मानव की प्रकृति है, अन्तर को को पहचान रहा ॥
उन रक्षक सबने ऋषि को बाँध लिया, राजा के पास चले ।
फिर चोरों को भी पकड़ लिया, सामान भी सारे वहीं मिले ॥

उन सबने राजा से सारी बातें बतलाईं, राजा ने ।
उन चोरों और महामुनि को भी दिया प्राणदण्ड उसने ॥
इस तरह बिना पहचान किए मुनि को सूली पर चढ़ा दिया ।
पर मृत्यु न हो पाई उनकी, सूली पर ही तब ध्यान किया ॥
राजा के सैनिकगण ने जाकर राजा को सब बतलाया ।
जिस तरह वे जीवित रहे शूल पर, तब राजा भी चकराया ॥
उसने उन मुनिश्रेष्ठ को जाकर चरणों में प्रणाम किया ।
फिर बोला, "मुनिवर, मैंने आपको अनजाने में कष्ट दिया ॥
अब क्षमा करें भगवन्, चरणों में यही निवेदन है मेरा ।
मैं शोकाकुल हूँ, पाप हुआ मुझसे, मुझको भय ने घेरा ॥"
राजा के अनुनय-विनय श्रवण कर मुनि उस पर हो गए प्रसन्न ।
राजा ने उनको सूली से तत्काल उतारा, हुआ धन्य ॥
फिर मन में सोंच-विचार रहे करते मुनि, "इसका क्या कारण ।
मुझको क्यों ऐसा दण्ड मिला, है पापरहित मेरा जीवन ॥
ऐसा विचार वे मुनि श्रेष्ठ चल गए जहाँ थे धर्मराज ।
बैठे निज लोक में वर आसन पर, बोले मुनि, "बतलाओ आज ॥
मैंने क्या पाप किया था जो मुझको सूली पर चढ़वाया ।
सारा रहस्य बतला मुझको, मैं आज सोंच कर कुछ आया ॥"
मुनि के ऐसे सुन वचन, डरकर बोले यूँ धर्मराज ।
"हे मुनिवर, आपने बचपन में था किया कुछ ऐसा बुरा काज ॥
जिससे सूली पर चढ़े, आपने एक पतंग के पुच्छ भाग ।
मैं सींक घुसेड़ दिया था, उसका ही फल है यह महाभाग ॥
है यथा अल्पदान भी महापुण्य के फल का प्रकाशक ।
वैसे ही अल्प पाप भी दुखदायी है जैसे हो कण्टक ॥"
श्रवण कर धर्मराज की बातें बोले मुनि माण्डव्य क्रुद्ध ।
"हे धर्मराज, मैंने तो पाप किया था जब मैं था अबुद्ध ॥
वह पाप हुआ था बाल्यकाल में, तुमने दिया कठोर दण्ड ।
बालक तो सदा क्षम्य, शास्त्रों का यह है नियमन अखण्ड ॥
तुमने कुछ नहीं विचार किया, तुमने जो की है मनमानी ।
उसका फल तुझे भोगना होगा, सुनो हमारी यह वाणी ॥

तुम शूद्र योनि में जन्म ग्रहण अब करो, शाप मेरा सुन लो ।
फिर मर्यादा जो धर्म की है उसको भी अब मन में गुन लो ॥
अब से चौदह वर्षों से नीचे का बालक जो करे पाप ।
तो दण्ड नहीं उसको देना, यह मर्यादा अब रखो आप ॥"
ऐसा कहकर माण्डव्य चले, फिर धर्मराज अवतरित हुए ।
वे ही थे विदुर, धर्ममय जिनके सारे ही शुभ चरित हुए ॥
उस युग में धरती पर दनुजों का बढ़ा हुआ था प्रबल भार ।
वे करते रहते थे सज्जन-सन्तों पर बहुविध अनाचार ॥
उनके अत्याचारों के शमन के हित सुरगण अवतीर्ण हुए ।
अवसर भगवान कृष्ण के भी अवतरण हेतु विस्तीर्ण हुए ॥
ऐसे अवसर पर धर्म के भी अवतार की आवश्यकता थी ।
माण्डव्य महामुनि के अभिशाप के कारण तब तत्परता थी ॥
सुरगण में तन धारण करने की अद्भुत शक्ति होती है ।
वे एक साथ कई तन धर सकते, उनकी शक्ति न खोती है ॥
अब धर्मराज ने भी दो तन धारण करने की की इच्छा ।
वे बन कर विदुर और युधिष्ठिर देने को आए शिक्षा ॥
जब महाराज शान्तनु के सुत चित्रांगद और विचित्रवीर्य ।
हो गए काल-कवलित तब कुल का जाता रहा समस्त धैर्य ॥
चित्रांगद तो मारे गए गन्धर्वों से जब वे थे कुमार ।
पर भीष्म ने करवाई शादी विचित्रवीर्य की भल प्रकार ॥
काशी नरेश की दो कन्यायें- अम्बिका, अम्बालिका सुघर ।
उनसे विचित्रवीर्य की शादी करवाई उन्होंने, पर ॥
वह राजयक्ष्मा का शिकार हो गया असंयम के कारण ।
वह युवा अवस्था में ही तब चल बसा, छोड़ रोते परिजन ॥
अब भीष्म हुए चिन्तित, कैसे यह कौरव कुल बच पाएगा ।
वह सत्यवती भी बोली, "बेटा, कुल विनष्ट हो जाएगा ॥
अब महाराज शान्तनु के पिण्ड, कीर्ति, वंश के रक्षक तुम ।
धर्मज्ञ शुक्र, बृहस्पति जैसे तात, कुल के संरक्षक तुम ॥
यह सोंच-समझ मैं तुझसे ऐसा कार्य कराना चाह रही ।
जिससे सब कुछ अब बच पाए, मैं आपद् धर्म निबाह रही ॥

मेरा सुत, और तुम्हारा भाई, वह विचित्रवीर्य सुन्दर ।
चल बसा छोड़ इस धरा धाम को, युवा अवस्था में ही, पर ॥
उसको कोई पुत्र न हो पाया, इसकी चिन्ता अब मुझको है ।
उसकी दोनों महिषी की भी, क्या कुछ भी चिन्ता तुझको है ?
यौवन-लावण्य से हैं सम्पन्न, वे काशिराज की कन्याएँ ।
रखती हैं पुत्र की अभिलाषा, वे दोनों रूपसी ललनाएँ ॥
अब इस कुल की सन्तति-परम्परा की रक्षा हित काम करो ।
मेरी आज्ञा से तुम राजा बन, प्रजापाल शुभ नाम धरो ॥
फिर उन दोनों से कर विवाह सन्तानोत्पादन करो, तात ।"
सुनकर माता के वचनों को कम्पित हो बोले भीष्म, "मात ॥
तुम क्या कह रही हो इसका क्या तुझको है कुछ भी ज्ञान ?
मैं राज-लोभ से सत्य त्यागूँ ? छिः छिः, यह कैसा निदान ?
त्यागे दिनकर निज प्रभा भले ही, शीतलता त्यागे मयंक ।
पर राज-लोभ में मैं अपने सिर ले नहीं सकता यह कलंक ॥
तुम करो धर्म की ओर दृष्टि, होता अधर्म से महानाश ।
क्षत्रिय के हित तो प्रण-भंग यह महानिन्द्य है कुप्रयास ॥
फिर भी इस कुल की रक्षा के हित एक तन्त्र बतलाता हूँ ।
मुनि व्यास यहाँ कुछ कर सकते हैं, उनको अभी बुलाता हूँ ॥
जब बुलवाए गए मुनि व्यास, तब सत्यवती बोली उनसे ।
"ब्रह्मर्षे, तुम मम प्रथम पुत्र, मैं कहूँ तो अपना कष्ट किसे ?
इस काल तात इस कौरव कुल पर भारी विपदा है छाई ।
तुम चाहो तो उद्धार करो, नौका अब डूबने को आई ॥
ये सत्यव्रत हैं भीष्म महाबल, अपना प्रण न छोड़ रहे ।
अपने प्रण की रक्षा हित कुल के हित से ये मुख मोड़ रहे ॥
हे अनघ, राज-शासन करने का इनका कोई विचार नहीं ।
सन्तानोत्पादन का भी ये रख पाते हैं आधार नहीं ॥
अतएव हमारी आज्ञा से तुम करो कार्य यह सम्पादन ।
अपने अनुजों की भार्याओं से करो सन्तति-उत्पादन ॥
वे ललनाएँ धर्मतः पुत्र पाने की कामना रखती हैं ।
तुम उनके गर्भ से सन्तति-उत्पादन कर दो, हम कहती हैं ॥"

सुनकर माता के वचनों को मुनि व्यास ने कहा "बात ऐसी ?
अम्बिका मेरे गन्ध-रूप को सहन करेगी ? तुम कहतीं कैसी ?
मेरी विरूपता को वह ललना सहन नहीं कर पाएगी ।
तब सन्तति विकृत होगी, तेरी आस नष्ट हो जाएगी ॥"
मुनि व्यास के वचनों को श्रवण कर बोली उनसे सत्यवती ।
"कौसल्या सब कुछ सह लेगी, वह भामिनी है अति शीलवती ।"
तब कहा व्यास ने, "कौसल्या कर ले शुचि वसन अभी धारण ।
फिर कर सिंगार शय्या पर मेरी प्रतीक्षा में रह अनुक्षण ॥
मैं उचित समय पर आऊँगा", कहकर वे हो गए अन्तर्हित ।
फिर सत्यवती मन में विचारने लगी क्या इसमें अनुचित ॥
फिर उसने जाकर कौसल्या को भाँति-भाँति से समझाया ।
मुश्किल से वह तैयार हुई, तब उसके जी में जी आया ॥
फिर ऋतुस्नाता कौसल्या को शय्या पर बैठा करके ।
बोलीं वे, "आएँगे तेरे देवर कुरूप वेष धर के ॥
तुम डरना मत, लज्जा मत करना, मिलना उनसे प्रेम सहित ।"
कौसल्या सास की बातों को सुन कर हो गई अति ही चिन्तित ॥
वह शय्या पर बैठी, मन ही मन भीष्म आदि कौरवगण का ।
चिन्तन करने लग गई, तभी आए व्यास, माथा ठनका ॥
वे तन में घी चुपड़े थे, कुत्सित रूप भी था अति ही भयंकर ।
काला था रंग, जटाएँ पिंगल, दाढ़ी-मूँछें थीं बढ़ कर ॥
देखा जब उन्हें अम्बिका ने, भय से मूँदे निज युगल नयन ।
तब व्यास देव ने किया समागम सोंच मातृ आज्ञा पालन ॥
पर काशिराज की कन्या भय से, उनकी ओर न देख सकी ॥
अतएव व्यास बोले माता से, "होगा सुत तो महाबली ॥
पर वह माता के दोष से अन्धा होगा, मैं क्या कर सकता ?
वह नयन रही मूँदे भय से, कारण है उसकी कातरता ॥"
श्रवण कर व्यास की बातों को बोली तब चिन्तित सत्यवती ।
"कुरूवंश का राजा अन्धा हो यह उचित नहीं हे दृढ़व्रती ॥

अतएव दूसरा राजा दो, जो कुल का भी हो संरक्षक ।
अन्यथा क्या लाभ इससे जो होगा नहिं वह कुलपालक ॥"
माता के वचनों को श्रवण कर, "तथाऽस्तु", कहकर व्यास ।
अन्तर्हित हो गए तभी तहीं, वह सत्यवती हो गई उदास ॥
तब कौसल्या ने उचित समय पर अन्धे सुत को जन्म दिया ।
फिर सत्यवती ने अपनी छोटी पुत्रवधू हित तन्त्र किया ॥
उसने अम्बालिका को नियोग विधि से करवाया गर्भाधान ।
वह मुनि व्यास को देख पाण्डुवर्णा हो गई, कँप गए प्राण ॥
उसको विषण्ण अवलोकन कर बोले व्यास, "देवी, सुन लो ।
तेरा यह पुत्र पाण्डु रंग का होगा, निज मन में गुन लो ।
तुम मुझको अवलोकन कर भय से हुईं विवर्णा इस कारण ।
होगा तेरा सुत पाण्डु, क्या अब मैं कर सकता हूँ साधन ॥"
ऐसा कह कर मुनि व्यास वहाँ से चले, मिली तब सत्यवती ।
उसको वतलाया मुनि ने जैसी होनी थी उसकी सन्तती ॥
फिर सत्यवती ने पुनः एक सुत के हित उनसे की विनती ।
तव कहा व्यास ने, "तथाऽस्तु", फिर सत्यवती हो गई दुखी ॥
तदनन्तर अम्वालिका ने जन्म दिया पाण्डु रंग के सुत को ।
वह था अति ही स्वरूपवान, था मोह हुआ सव परिजन को ।
पर सत्यवती ने अम्विका को फिर कहा व्यास से संगम हित ।
पर वह व्यास की कुत्सित आकृति चिन्तन करके थी चिन्तित ॥
तव मन्त्र किया उसने ऐसा, निज दासी को तैयार किया ।
वह थी लावण्यवती रमणी, उसने अनुपम श्रृंगार किया ॥
फिर भूषित हो वह गई रमण-गृह में, आए जव मुनि व्यास ।
आगे वढ़ उनका किया स्वागत, दिल में रख अति ही हुलास ॥
उसकी सेवा-पूजा से मुनिवर हो प्रसन्न शयनोपरान्त ।
वोले, "देवी, है किया तुष्ट तुमने सेवा करके एकान्त ॥
अव तू न रहेगी दासी, तेरे गर्भ में आया महामना ।
अत्यन्त श्रेष्ठ, धर्मावतार वालक, ऐसी विधि की रचना ॥"

ऐसा कहकर मुनि व्यास चले, फिर दासी ने जो पुत्र जना ।
वह ही थे विदुर व्यासपुत्र, विवुधों में है जिनकी गणना ॥
वे धृतराष्ट्र औ' पाण्डु के ही थे भाई धर्मावतार ।
माण्डव्य-शाप से धर्मराज ही जन्मे थे तव इस प्रकार ॥
वे काम-क्रोध से रहित सर्वथा, अर्थशास्त्र के ज्ञाता थे ।
वे नीति-निपुण थे, राजनीति के तन्त्रों के अभिज्ञाता थे ॥
मुनि व्यास ने बतलाईं सारी बातें तव सत्यवती को भी ।
जैसे छल किया अम्बिका ने भेजी उसने अपनी दासी ॥
फिर वे हो गए अन्तर्हित, ऐसे बढ़ा तभी से कुरू वंश ।
अभ्युदय होने लगा राज का, मिटे द्वन्द्व, दुख नृशंस ॥
धृतराष्ट्र, पाण्डु औ, विदुर ये तीनों जन्मे जबसे धरती पर ।
कृषि का उत्पादन बढ़ा और धरती अतीव हो गई उर्वर ॥
पर्जन्य बरसते यथाकाल, द्रुमों में बढ़ गए फल-प्रसून ।
नर-नारी की क्या बात, पशु-पक्षी भी प्रमुदित हुए दून ॥
सारी प्रजा हो गई तुष्ट, तस्कर-दस्युगण हुए नष्ट ।
चारों वर्णों के लोग सुखी थे, था न किसी को कोई कष्ट ॥
नाना विधि की समृद्धियों से था शोभित वह कुरू देश तभी ।
उन भीष्म सरीखे महापुरूष के ऐसे थे प्रबन्ध सभी ॥
सब ओर धर्म का शासन था, उत्सव होते रहते सब दिन ।
उन भीष्म महाबल के संरक्षण में होते कौतुक अनगिन ॥
फिर उन तीनों सुकुमारों के यज्ञोपवीत संस्कार हुए ।
थे तीनों व्रत-अध्ययन-निरत, उनके सब धर्माचार हुए ॥
व्यायाम, धनुर्विद्या, शस्त्रास्त्रों की शिक्षा उनने पाई ।
नाना इतिहास-पुराण-वेद-वेदांगों में भी गति आई ॥
पाण्डु धनुर्विद्या में श्रेष्ठ थे, धृतराष्ट्र बल में बढ़ कर ।
थे धर्म-परायण विदुर महामति, नीति विशारद पुरुष प्रवर ॥
थे धृतराष्ट्र अन्धे, थे विदुर पारशव, अतः इसी कारण ।
राज्याधिकार मिल गया पाण्डु को, करने वे लग गए शासन ॥

तब महाबली प्रतापी भीष्म ने गान्धार की कन्या से ।
कर दिया विवाह धृतराष्ट्र का, उस सुन्दरी अनन्या से ॥
वह सुबलसुता गान्धारी थी अति ही पतिव्रता इसीलिए ।
उसने निश्चय कर लिया, रहेगी आँखों पर वह पट्ट दिए ॥
उसने सोंचा यदि मेरे पति हैं नयनहीन, तब मैं देखूँ ।
यह उचित नहीं, पतिव्रता का जो धर्म उसे ही मैं लेखूँ ॥
अपनी सेवा-शिष्टाचारों से किया मुदित उसने सबको ।
वह पति-परायणा पति-सेवा में लगा दिया निज तन-मन को ॥
फिर पाण्डु नृप ने स्वयंवर में कुन्ती को जा प्राप्त किया ।
वह शूरसेन यदुवंश नृप की थी लावण्यवती कन्या ॥
मथुरा में राजा देवक के घर एक पारशव कन्या थी ।
वह थी सम्पन्न रूप-यौवन से, सब ही भाँति अनन्या थी ॥
उसको प्रतापी भीष्म ने लाकर किया विदुरजी से विवाह ।
जिससे गुणवान अनेकों सुत उत्पन्न हुए, हुई पूर्ण चाह ॥
इस तरह से दम्पति प्रभु-भक्ति में निरत सदा ही रहते थे ।
सन्तोष वित्त था उनका, वे सुख-दुख समभाव से सहते थे ॥

द्वितीय सर्ग

दोहा- पाण्डुसुतों को जानकर, बल-पौरूष में श्रेष्ठ ।
धृतराष्ट्र चिन्तित हुए, भाये भाव अनिष्ठ ॥
चिन्ता के कारण रातों में भी नींद न उनको आती थी ।
दुर्योधनादि निज सुत की श्रीवृद्धि की चाह सताती थी ॥
तदनन्तर शकुनि, दुर्योधन, दुःशासन ने यह कर विमर्श ।
राजा से चाहा, पाण्डु सुतों को जला दें तभी मिटे अमर्ष ॥
पर तत्वज्ञानी विदुर ने उनकी दुष्ट मन्त्रणा को जाना ।
वे पाण्डुसुतों के थे हितचिन्तक, अतः उन्होंने यह ठाना ॥
ऐसा कुछ दें संकेत उन्हें जिससे बच पाएँ वे आफत से ।
वे बोले, "सुनो युधिष्ठिर, तुम बचना जो हो वारणावत से ॥
तब कुछ मन्त्रणा हमारी लो, वह भवन इस तरह निर्मित है ।
जिसमें लग सकती आग सहज में, यही सोंच हम चिन्तित हैं ॥
रिपुओं ने तुम सब बन्धुओं के वध हित कर दिया भवन निर्मित ।
जो बना हुआ है लाक्षादि से चिन्तित हैं हम इसके हित ॥
जो वहाँ तुम्हारा होगा परिजन वही नाश करना चाहे ।
वह पापी कुटिल पुरोचन ही अब तुझे नष्ट करना चाहे ॥
जो आग लगेगी उस निवास में उससे बचने के हित तुम ।
करना सुरंग तैयार एक, फिर दिशा-ज्ञान भी रखना तुम ॥
जो तुम पाँचों बन्धुओं में मेल रहेगा, तब बच पाओगे ।
अन्यथा तात, इस दुरभिसन्धि से तुम विनष्ट हो जाओगे ॥"
सुन करके वचन विदुर के, बोले कौन्तेय, "हे तात, मुझे ।
सब कुछ हो गया ज्ञात, नहीं कुछ भी चिन्ता की बात तुझे ॥
मैं समझ गया सब आप की बातें," सुनकर वचन युधिष्ठिर के ।
चल पड़े विदुर निज घर को पर, भय मिटे नहीं उनके उर के ॥

इस तरह पाण्डुपुत्रों ने यात्रा की उस वारणावत पुर को ।
उनके शुभागमन को सुनकर था मोद अतिव सब पुरजन को ॥
सब लोग सुसज्जित हो, मंगल की सामग्रियाँ लिए कर में ।
अगवानी करने हित आए, संवाद जान यह पल भर में ॥
उन सब पुरजन से घिरकर शोभित हुए युधिष्ठिर धर्मराज ।
जैसे सुर-समुदायों में शोभित होते वज्री विबुधराज ॥
पुरजनों से पाकर स्वागत ऐसा, नगरी में प्रवेश किया ।
सबसे पहले विप्रों से जाकर आशीर्वाद-निदेश लिया ॥
फिर गए क्षत्रियों के घर में, फिर वैश्य-शूद्रों के निवास ।
उनके जाने से प्रजाजन में छाया हर्ष, उमंग, उल्लास ॥
इस तरह स्वागत पाकर पुरवासी जन से वे पाण्डव सब ।
आगे कर वहाँ पुरोचन को, पहुँचे अपने आवास में अब ॥
दोहा - वहाँ पुरोचन ने दिए, आसन, अशन अशेष ।
शय्या आदि विलास के, विविध पदार्थ विशेष ॥
हुआ बड़ा सत्कार उन्हें उस नीच पुरोचन द्वारा ।
करते थे उपभोग वे उस प्रासाद में रह सुख सारा ॥
नगर-निवासी श्रेष्ठ पुरुष उनकी सेवा हित तत्पर ।
रहते थे, उनको न कभी थी कोई कमी वहाँ पर ॥
पर इतना होने पर भी वे धर्मराज चिन्तित थे ।
वे उस घर की दुरभिसन्धि से भली-भाँति परिचित थे ॥
एक दिवस वृकोदर से वे बोले, "सुन लो भाई ।
इस घर में रहने से अपनी होगी नहीं भलाई ॥
यह भवन है निर्मित अनलोद्दीपक सामानों से ।
राल, मूँज, सन, बाँस, चर्बी, घी आदि अभिधानों से ॥
इस घर की दीवारों से आती है गन्ध इन्हीं की ।
यह पुरोचन भी सुनता है सदा सुयोधन ही की ॥
सदा यह रहता है हम सब ही पर घात लगाए ।
इसकी है चिन्ता हम सबको कैसे यह जलाए ॥
भीमसेन, पर सफल नहीं होगी इसकी अभिलाषा ।
काका विदुर ने बतलाई थी मुझे भेद की भाषा ॥

आने वाली विपदा का उन्हें सब पता लगा था ।
अतः उन्होंने मुझे पूर्व में ही यह तथ्य कहा था ॥
विदुरजी हैं हितचिन्तक हम सबके बाल्यावस्था से ।
बचेंगे हम सब इस विपदा से उन्हीं की कृपा से ॥"
अग्रज की बातें सुनकर बोले वृकोदर, "भैया ।
आपको जो है यह ज्ञात, है यहाँ विपत्ति अवैया ॥
तो हम सब छोड़ें इस घर को, चलें जहाँ शुभकर हो ।
जान-बूझ कर रहें वहाँ क्यों जो विपत्ति का घर हो ॥"
बोले धर्मराज यूँ सुन कर, "कारण हैं कुछ ऐसे ।
जिससे हमलोगों का रहना होगा नहीं अनैसे ॥
यदि हम जलने के ही भय से छोड़ दें इस भवन को ।
तौभी दुर्योधन मरवा सकता अब भी हम सबको ॥
वह प्रतिष्ठित है पद पर, हम सब उससे वंचित हैं ।
उसके हैं संगी बहुतेरे हम साहाय्य-रहित हैं ॥
उसे खजाना-कोष अमित, वह चाहे जो कर सकता ।
अतः यहाँ से हम सब चल दें तौभी नहीं कुशलता ॥
इस कारण दुर्योधन और पुरोचन दोनों को ही ।
गफलत में रख करके काम बनाएँ हम सब यों ही ॥
यहाँ के वन-प्रदेशों में सब ओर ही करके विचरण ।
ज्ञात करें हम मार्ग विविध, है यही श्रेय का साधन ॥
इसके सिवा आज से ही हम एक सुरंग बनाएँ ।
जो ऊपर से ढँकी रहे, जिसको न अन्य लख पाएँ ॥
उस सुरंग में घुसने पर अग्नि न जला पाएगी ।
इसकी खबर पुरोचन को भी कभी न मिल पाएगी ॥
हमें छोड़ आलस्य, आज से ही यह करना होगा ।
सुख की आशा में दुख से यह जीवन भरना होगा ॥"
इधर युधिष्ठिर सोंच रहे थे जब यह सब करने को ।
उधर विदुरजी भी चिन्तित थे यही सब भरने को ॥
एक खनक था कुशल बहुत ही और परम विश्वासी ।
उसे विदुरजी ने भेजा, पाण्डव थे जहाँ निवासी ॥

मिलकर पाण्डुसुतों से उसने कहा एकान्त में जाकर ।
"मुझे विदुरजी ने भेजा है तुम सब पर कृपा कर ॥
मैं हूँ कुशल खनक, मुझसे जो कुछ सेवा लेनी हो ।
तो कहिए, मैं करूँ क्या, मैं तो उनका सेवी हूँ ॥
कहा उन्होंने मुझे, "वारणावत में तुम जा करके ।
करो पाण्डवों का हित-सम्पादन, साहस उर धर के ॥"
अतः आप जल्दी आज्ञा दें, मूढ़ पुरोचन, पापी ।
आग लगा देगा इस घर में, वह दुष्ट सन्तापी ॥
दुर्मति दुर्योधन की इच्छा तुम सबको मरवा दे ।
इसी लाह के घर में गफलत में रख कर जलवा दे ।"
खनक की बातें श्रवण कर बोले कौन्तेय ज्ञानी ।
"मैं तुमको पहचान रहा हूँ, सुनो हमारी वाणी ॥
यह सदन है निर्मित अग्नि-उद्दीपक वस्तु से ।
इसे पुरोचन ने बनवाया दुर्योधन के मत से ॥
पापी दुर्योधन हम सबको सदा सताया करता ।
हम सब अब असहाय हो चले, तुम्हीं पर निर्भरता ॥
तुम जो यत्न करो तो हम इस छन्द से बच पाएँगे ।
ताता, अन्यथा हम सब इसमें जल कर मर जाएँगे ॥"
कहा खनक ने यह सब सुनकर "अब मंगल ही होगा ।
हम सुरंग निर्मित करते हैं, सब कुछ जल्द ही होगा ॥"
तब उस कुशल खनक ने एक सुरंग विचित्र बनाई ।
वह भवन के मध्य भाग में, पड़ती नहीं दिखाई ॥
उसके मुख पर थे कपाट, पर जान न कोई पाया ।
वह पुरोचन दुष्टबुद्धि भी यूँ धोखे में आया ॥
पाण्डवगण ले शस्त्रास्त्र उस मुख पर ही रहते थे ।
और पुरोचन को ऊपर से सभी 'बन्धु' कहते थे ॥
दिन में मृगया के मिस पाण्डव वन में करते विचरण ।
रात्रि-काल में वे सुरंग के मुख पर करते जागरण ॥
अतः पुरोचन को कुछ करने का न मिल रहा अवसर ।
वह रहा करता था चिन्तित, करता क्या वहाँ पर ॥

एक दिवस तब माता कुन्ती ने कर कुछ आयोजन ।
विप्रों को बुलवाया, सबको वहीं कराया भोजन ॥
करके भोजन विप्र आदि तो चले गए सब तत्क्षण ।
पर आई थी एक भीलनी रुकी रही वह उस दिन ॥
थे उसके सुत पाँच, वे सभी मदिरा पी मतवाले ।
सुध-बुध खोए पड़े रहे, वे हो गए काल-निवाले ॥
आँधी चली जोर की तब ही, रात्रि परम भयानक ।
देखा तब ही आग लग गई चारों ओर अचानक ॥
वह लाह का भवन लगा जलने चट चट ध्वनि कर ।
अतिव भयानक लपटें उठने लगीं चतुर्दिक हर हर ॥
देख दृश्य विकराल परम पाण्डव माता संग भागे ।
निकले सभी सुरंग मार्ग से, तब पुरवासी जागे ॥
वे सब व्याकुल होकर कहने लगे, "अहो, देखो तो ।
पापी वह पुरोचन भी जल गया, जरा सोंचो तो ॥
उसने दुर्योधन के कहने से यह भवन बनाया ।
पर वह दुष्ट स्वयं भी इसमें जला, लाभ क्या पाया ॥
सच है, जो जैसा करता है वैसा फल पाता है ।
पेड़ बबूल रोपने वाला आम नहीं खाता है ॥
है धिक्कार उसे, वह पापी धृतराष्ट्र कैसा है ।
हाय, पाण्डवों को जलवाया, आततायी जैसा है ॥
वारणावत के लोग इस तरह तब विलाप करते थे ।
पाण्डुसुतों को मरा जान वे सब आहें भरते थे ॥
उधर सभी पाण्डव माता के संग सुरंग से निकले ।
चले गए वे दूर, न कोई जान सका हड़बड़ में ॥
उधर विदुरजी ने भेजा था वन में एक ज्ञानी ।
जिसने पाकर देखा पाण्डव थाह रहे थे पानी ॥
उसने पाण्डुसुतों को तब ही तरणी एक दिखाई ।
परिचय अपना देकर सबको गंगा पार कराई ॥
फिर बोला, "तुम सबकी जय हो, तुम विजयी होओगे ।
दुर्योधन को कर परास्त सब मनस्ताप खोओगे ॥

कहा विदुरजी ने मुझको सन्देश यह देने को ।
मैं जाता हूँ, उन्हें तुम्हारा कुशल-क्षेम कहने को ॥"
कहकर ऐसा लौट गया वह नाविक जैसे आया ।
उधर पाण्डवों ने भी अपना गुप्त मार्ग अपनाया ॥
कोई नहीं पहचान सके ऐसे वे सब चलते गए ।
उधर वारणावतवासी भी लाक्षागृह निकट गए ॥
पाण्डुनन्दनों की हालत वे सब लेने आए थे ।
आग बुझाने लग गए वे सब, सब ही घबराए थे ॥
देखा सबने सारा घर वह बना लाह का भयंकर ।
जलकर भस्म हुआ था, अब तो बचा मात्र था खंडहर ॥
उसमें वह पुरोचन भी जल करके मरा पड़ा था ।
देख यह पुरवासी बोले, "यह तो दुष्ट बड़ा था ॥
करनी का फल इसने पाया, मुफ्त ही जान गँवाई ।
जो बुराई अन्यों की करता मिलती उसे बुराई ॥
दुर्योधन ने पाण्डुसुतों के वध हित इसे बनाया ।
धृतराष्ट्र ने भी अपनी सहमति दे सब करवाया ॥
निश्चय ही वे भीष्म, द्रोण, विदुरादिक भी हैं दोषी ।
उन सबके रहते पाण्डव सब हुए कष्ट दुख भोगी ॥
अब हमलोग संदेसा भेजें धृतराष्ट्र के ढिग यूँ ।
"तेरी हुई कामना पूरी, मर गए सब पाण्डव, क्यूँ ॥"
कहकर ऐसा उन सबने कुछ इधर-उधर जो देखा ।
तब उस भीलनी और उसके पुत्रों के शव को देखा ॥
यह सब तो सबने देखा, पर नहीं सुरंग को देखा ।
भरी हुई थी वह धूल से, रहा वह अनदेखा ॥
तदनन्तर पुरवासी सबने सूचित किया नृप को ।
पाण्डव और पुरोचन जल गए, कहें क्या हम किसको ॥"
धृतराष्ट्र यूँ पाण्डुसुतों का जब विनाश सुन पाए ।
वे विलाप करने लग गए, "हा कैसे दुर्दिन आए ॥
अहो, वीर पाण्डव सब मर गए जननी संग, विकलता ।
मानो मेरे अनुज पाण्डु मर गए आज फिर, लगता ॥

जाएँ मेरे कुछ सुहज्जन करें दाह-संस्कार ।"
सुनकर धृतराष्ट्र की बातें हुए सभी तैयार ॥
सबने जाकर सुर-सरिता में दी जलांजलि उनको ।
शोक व्याप्त हुआ भारी कौरव सारे परिजन को ॥
एक विदुरजी ही सारी घटनाओं से अवगत थे ।
फिर भी ऊपर से देखे में वे भी मर्माहत थे ॥
सुना जभी गांगेय भीष्म ने दग्ध हुए पाण्डव सब ।
तब वे लगे शोक करने, "कैसा संकट आया अब ॥
मुझे नहीं होता प्रतीत जल मरे बली पाण्डव सब ।
हा, कैसे यह हुआ, नहीं कुछ मुझे बुझाता है अब ॥
वीर भीमसेन, अर्जुन क्या हो गए ऐसे श्रीहत ।
जो वे जलकर मरे, नहीं मुझको लगता है यह सच ॥"
ऐसा कहकर वे जलांजलि देने को थे तत्पर ।
तभी विदुरजी बोले उनसे, "दुखी न हों, हे नरवर ॥
शोक त्यागें आप, पाण्डुसुत जननी संग सुरक्षित ।
नहीं जलांजलि उनके हित देना अब ही है समुचित ॥
मैंने कुछ उनके बचाव के हित-प्रबन्ध किया था ।
जिससे वे सब जीवित हैं, मैंने सब जान लिया था ॥
वारणावत में उनके वध की पूरी व्यवस्था थी ।
पर मेरी भी उनके रक्षण हित ही तत्परता थी ॥
भेजा मैंने खनक एक, ऐसी सुरंग खुदवाई ।
जोकि किसी को रंच मात्र भी पड़ी नहीं दिखलाई ॥
उसी सुरंग से निकल गए माता के संग सब भाई ।
बच गए सब, उस महा भयंकर दाह से मुक्ति पाई ॥
पाण्डव सब जीवित हैं निश्चय, शोक न करिए आप ।
छिपे हुए हैं वे सब, उनके दूर हुए सन्ताप ॥
उचित समय पर निकलेंगे वे, मुझे है सब कुछ ज्ञात ।"
भीष्म हुए प्रफुल्लित सुनकर विदुर की सारी बात ॥

तृतीय सर्ग

दोहा - द्रौपदी को प्राप्त किया, पाण्डुसुतों ने, जान ।
हुए प्रफुल्लित विदुर बड़े, मन ही मन मतिमान ॥

उनको यह सब भी ज्ञात हुआ, दुर्योधनादि कौरवगण सब ।
पाँचाली के स्वयंवर से लज्जित हो लौट के आए, तब ॥
वे गए भूप धृतराष्ट्र निकट, बोले, "शुभ हो, हे महाराज ।
है अहो भाग्य हम सबका कि कौरव कुल की श्रीवृद्धि आज ॥"
धृतराष्ट्र हुए प्रसन्न अतिव, वे भी तब बोल उठे सहसा ।
"शुभ हो, शुभ हो, है अहो भाग्य", उनने दिल में समझा ऐसा ॥
मानो द्रौपदी ने दुर्योधन का ही वरण किया है आज ।
वे बोल उठे हो मुदित तभी, "उत्सव के अब ही सजें साज ॥
द्रुपदजा हित अनमोल बहुत सारे वसनाभूषण लाओ ।
मेरे सुत दुर्योधन को शान सहित पुर में तुम ले आओ ॥"
सुनकर नृपति के वचनों को बोले धीरे से विदुर तभी ।
"पाँचाली ने है वरण किया अर्जुन को, आई खबर अभी ॥
सब वीर पाण्डुसुत नृप द्रुपद से पूजित हो रह रहे वहीं ।
उनके कुछ और सगे-सम्बन्धी भी उनसे हैं मिले तहीं ॥
वे सब सकुशल हैं", सुनकर विदुर की वाणी बोले धृतराष्ट्र ।
"है अहोभाग्य, यदि पाण्डव जीवित हैं, यह है विस्मय की बात ॥
हैं कुन्ती देवी बड़ी साध्वी, द्रुपद का सम्बंध अतुल ।
अच्छा है उनसे मिल करके गौरव पाया यह मेरा कुल ॥
हे विदुर, युधिष्ठिर पाण्डुपुत्र जैसे, वैसे ही मेरे सुत ।
मैं हूँ अति ही प्रसन्न श्रवण कर तेरी यह खबर अद्‌भुत ॥"
धृतराष्ट्र की बातें श्रवण कर बोले तब ही यूँ विदुर वचन ।
"ऐसी ही सदा बनी रह जाए बुद्धि आपकी, हे राजन् ॥"

जब विदुर यहाँ से घर आए, तब दुर्योधन बोला जाकर ।
"हे महाराज, मैं कहूँ क्या, आया है अब ऐसा अवसर ॥
जब शत्रुपक्ष का अभ्युदय होता जाता है दिन प्रतिदिन ।
फिर आप भी हर्षित होते हैं उनकी श्रीवृद्धि में पल-छिन ॥
श्रवण कर विदुर की बातों को उनकी प्रशंसा करते हैं ।
क्या करना चाहिए आपको और क्या सब करते रहते हैं ॥
हम सबके हित है उचित यही, हम करें पाण्डवों को विनष्ट ।
उनका अभ्युदय देख-देख हो रहा है मुझको महा कष्ट ॥"
दुर्योधन के वचनों को सुन बोले धृतराष्ट्र वचन गंभीर ।
"बेटा, मैं भी वह चाह रहा, जो चाह रहे हो तुम अधीर ॥
पर मैं न चाहता हूँ कि विदुर जाने अभिमत मेरे मन का ।
इसलिए विदुर से पाण्डुसुतों की प्रशंसा करता रहता ॥
मैं करता हूँ गुणगान पाण्डवों का ताकि वह महामना ।
मेरे मन के भावों की कुछ भी जान नहीं पाए रचना ॥"
श्रवण कर बातें धृतराष्ट्र की कर्ण और दुर्योधन ने ।
यूँ कहा, "विदुर से डरना क्या, अब करें कहा है जो हमने ॥
उन पाण्डुसुतों पर आक्रमण कर उनका वध हम कर डालें ।
जब तक वे सब हैं शक्तिहीन, हम अपना काम बना डालें ॥
कर दें हम द्रुपद पर आक्रमण, पाण्डुसुतों को बन्दी कर ।
उनके विनाश का तन्त्र करें, इसके हित है स्वर्णिम अवसर ॥"
बोले नृपति उनके मत सुनकर, "राय तुम्हारी समुचित है ।
पर भीष्म, द्रोण, विदुर की बातें भी सुन लें इसमें हित है ॥
वे सभी मन्त्र देंगे हितकर उनको बुलवाओ तुम दोनों ।
जैसी उनकी हो राय तात, वैसा ही कर डालो दोनों ॥"
श्रवण कर बातें धृतराष्ट्र की, भीष्म, द्रोण, विदुर को जब ।
बुलवाया गया, कही गंगानन्दन ने अपनी सम्मति तब ॥
"राजन्, विरोध पाण्डुपुत्रों संग कभी नहीं समुचित होगा ।
उनको आधा तुम दे दो राज इसमें ही सबका हित होगा ॥
यदि कुछ विपरीत करोगे तो निन्दा तेरी जग में होगी ।
बस प्रेम सहित उनका हिस्सा दे दो, मेरी सहमति होगी ॥"

आचार्य द्रोण भी बोल उठे, "संवाद भेज द्रुपद के पास ।
बुलवा लें पाण्डुसुतों को राजन्, यही हमारा मन्त्र खास ॥
फिर दे दें राज उनका आधा, इसमें ही अभी भलाई है ।
हम भी हैं सहमत भीष्म महाशय का अभिमत सुखदाई है ॥"
जब मौन हुए आचार्य यह कहकर तब विदुरजी यूँ बोले ।
"राजन्, हम कर्ण और दुर्योधन के सम्मुख क्या मुँह खोलें ॥
हित की बातें अच्छी न लगें तव क्या कोई कर सकता है ।
जो हो कुपंथ सेवी सत्पथ पर कभी नहीं बढ़ सकता है ॥
आचार्य और ये भीष्म महामति धर्मशास्त्र के ज्ञाता हैं ।
ये दोनों महापुरुष कौरव-पाण्डव दोनों के त्राता हैं ॥
ये दोनों पक्षों के हित में जो होगा उचित करेंगे ही ।
ये पक्षपात नहीं कर सकते- दोनों के हितू रहेंगे ही ॥
इन महामानवों ने जो कुछ है कहा वह है उचित, तात ।
उन पाण्डुसुतों से मेल रखें इससे वढ़कर क्या और बात ॥
ये दुर्योधन औ कर्ण चाहते हैं पाण्डव पर आक्रमण ।
पर क्या ये जीत सकेंगे उनको ? फिर विग्रह का क्या कारण ?
वह वीर धनंजय और भीम, सहदेव, नकुल भी हैं अजेय ।
कोई उनको जीतेगा इसमें शक मुझको, यह नहीं श्रेय ॥
फिर उनके रक्षक और सहायक हैं वलराम-कृष्ण उधर ।
सारी यादव सेना उनके संग-द्रुपद का सम्वन्ध इधर ॥
इस तरह सर्वथा वे अजेय हैं, उनके संग विग्रह अनुचित ।
राजन्, उनसे रख मेल रहें, इसमें ही होगा सवका हित ॥
जो कार्य शान्तिपूर्वक होवे उसमें विग्रह है नहीं उचित ।
फिर प्रजा के भी प्रिय वे सव, प्रजा उत्सुक है उनके हित ॥
वे धर्मपूर्वक राज्य के भी अधिकारी हैं यह उन्हें ज्ञात ।
यह राज था पहले उनके पिता का- वे भूलेंगे यह वात ?
अतएव कीजिए प्रिय उनका इसमें ही सवका हित होगा ।
दुर्योधन, कर्ण, शकुनि के मत से चलने में अनहित होगा ॥
वे सव अधर्मरत, अन्यायी, दुर्वुद्धि न इनकी राय उचित ।
इनकी वातों में पड़ें नहीं- राजन्, इसमें ही सवका हित ॥"

श्रवण कर विदुर के हितकर वचनों को बोले यूँ धृतराष्ट्र ।
"है सत्य आपलोगों का कहना मुझे भी यह होता ज्ञात ॥
अतएव विदुर, तुम ही जाओ, उन पाण्डव वीरों को लाओ ।
उनकी माता एवं पांचाली को भी मान सहित लाओ ॥
यह है सौभाग्य की बात कि वे जीवित लाक्षागृह से निकले ।
मिल गई द्रुपद कन्या भी उनको-सुनकर मेरे रोम खिले ॥
यह है हम सबकी श्रीवृद्धि- हे विदुर, शीघ्र तुम जाओ अब ।
उन पाण्डुसुतों को मान सहित मेरे पुर में ले आओ अब ॥"
धृतराष्ट्र की आज्ञा मिलने पर लेकर धन-रत्न विविध प्रकार ।
चल पड़े विदुर द्रुपद के ढिग भेंटे सबसे क्रमानुसार ॥
राजा द्रुपद ने प्रेम सहित उनका अति ही सत्कार किया ।
फिर कुशल-प्रश्न पूछा उनसे अपना वृत्त उच्चार किया ॥
फिर देखा वहाँ विदुरजी ने भगवान कृष्ण थे समुपस्थित ।
पाण्डव सब भी थे उनके संग, वे मिले सभी से छोह सहित ॥
उन सबसे कुशल-प्रश्न पूछा, पूछा स्वास्थ्य विषयक प्रश्न ।
फिर धृतराष्ट्र के दिए हुए दे दिए उन्हें धन-धान्य-रत्न ॥
फिर बोले अति विनीत भाव से, "राजन्, मेरी बात सुनें ।
कुछ कहा है नृपति धृतराष्ट्र ने आपलोग सो बात गुनें ॥
जो यह सम्बन्ध हुआ है आपसे, इससे वे, हे महाराज ।
अति ही प्रसन्न हैं, मान रहे वे हैं कृतार्थ अपने को आज ॥
है सभी कौरवों को प्रसन्नता, है प्रसन्न हस्तिनापुर ।
वे सबके सब सौभाग्य मानते पाकर यह सम्बन्ध मधुर ॥
अतएव पाण्डवों को हस्तिनापुरी जाने दें मेरे संग ।
कुरुवंशी मिलने को उत्सुक हैं- है प्रेम उनका अभंग ॥
ये दीर्घकाल से प्रवासी हैं- ये सब भी उत्सुक होंगे ।
ये भी निज पुर के दर्शन कर अति ही प्रफुल्लचित्त होंगे ॥
कौरव कुल की ललनायें सब, हस्तिनापुरी के नर-नारी ।
सब कृष्णा के दर्शन हित आकुल, उन्हें व्याकुलता भारी ॥
वे सब करते प्रतीक्षा इसकी, आप शीघ्र आदेश करें ।
ये पाण्डव पत्नी सहित चलें, उन सबके विरह-ज्वाल हरें ॥

जो आप पाण्डवों को जाने की आज्ञा देंगे अभी, तात ।
तो मैं हस्तिनापुरी भेजूँगा दूत बताकर सभी बात ॥"
सुन कर प्रवचन विदुरजी के बोले द्रुपद, "हे महाप्राण ।
है उचित सर्वथा कथन आपका, मुझे भी मोद हुआ महान ॥
इन पाण्डुसुतों का अपने पुर में जाना है सर्वथा उचित ।
फिर भी मैं अपने मुख से कहूँ यह मुझे जान पड़ता अनुचित ॥
यदि पाँचों पाण्डव और कृष्ण-बलराम भी इसकी सम्मति दें ।
तो हमें नहीं कोई आपत्ति, सहर्ष हम अपनी अनुमति दें ॥"
द्रुपद की बातें श्रवणकर बोले कौन्तेय युधिष्ठिर यों ।
"हम सभी लोग हैं आपके वश में, कहेंगे जैसा करेंगे त्यों ॥"
सुनकर बोले प्रभु वासुदेव, "इनका जाना ही उचित है अब ।
कब तक ये रहेंगे इधर-उधर," सुन विदुर गए कुन्ती ढिग तब ॥
जाकर कुन्ती देवी के चरणों में प्रणाम किया उनने ।
देखा कुन्ती ने विदुर को जब, वे फूट-फूट लगीं रोने ॥
हो विह्वल वे बोलीं, "हे विदुर, तुम्हारी दया से जीवित हम ।
लाक्षागृह से तुमने ही बचाया, तुम्हें ख्याल मेरा हर दम ॥
ये तेरे आशीर्वाद और शुभ इच्छा से जीवित सब सुत ।
इनका जीवन तेरे अधीन, हम और क्या अब कहें बहुत ॥"
इतना कहकर पृथा देवी रोने लग गईं तब विदुर कहा ।
"हे देवि, न करिए शोक, आपका कष्ट सकल अब गया रहा ॥
ये आपके सुत सब महाबली, अधिकार राज पर कर लेंगे ।
अब शोक न करिए आप और कुछ हम संदेश सुखद देंगे ॥
अब धृतराष्ट्र भी चाह रहे, देने को राज भाग आधा ।
उन्होंने इन्हें बुलाया है, अब इसमें क्या होनी बाधा ॥
अब चलिए आप सभी प्रसन्न हो, चिन्ता की कोई बात नहीं ।"
यह सुनकर कुन्ती मुदित हुई, आये सब लोग तुरत तब ही ॥
सब चलने लगे प्रसन्नमना, राजा द्रुपद ने हो प्रसन्न ।
हाथी-घोड़े-धन-रत्न दिए, पाण्डव के जीवन हुए धन्य ॥
जब सुना नृप धृतराष्ट्र ने पाण्डव वीरों का यह शुभागमन ।
तब भेजा अगवानी के हित, आए बहुतेरे कौरवजन ॥

आचार्य द्रोण, कृप, चित्रसेन-इनने की उनकी अगवानी ।
श्रवण कर उनका शुभागमन सज उठी कुरू कुल रजधानी ॥
सड़कों पर पुष्प बिखेरे थे, जल का छिड़काव सुगन्धित था ।
सारा पुर दिव्य धूप-गन्ध से सुमन-सेज सा सुरभित था ॥
ध्वजाएँ फहराती थीं, ऊँचे भवनों पर थे पुष्प-हार ।
नाना प्रकार के बाजों से भी पुर का बढ़ता था सिंगार ॥
वह सारा नगर हस्तिनापुर, देदीप्यमान हो उठा तभी ।
उन पाण्डव वीरों के दर्शन हित पुर नर-नारी चले सभी ॥
देखा जब उन वीरों को तब बोले ऐसे वे पुरवासी ।
"ये ही हैं पुरुषोत्तम, धर्मज्ञ, युधिष्ठिर सबके विश्वासी ॥
ये हमलोगों की देख-भाल करते थे पुत्र सरिस भाई ।
इनके आने से लगता है आए पाण्डु नृप सुखदाई ॥
ये कुन्ती देवी के सुपुत्र यदि पुनः नगर में चल आए ।
तो हम सबका कल्याण हुआ, हमने सारे दुख बिसराए ॥
यदि किया है हमने दान-पुण्य तो ये पाण्डव सब ही भाई ।
इस नगर में करें निवास सैकड़ों वर्षों तक हो स्थाई ॥"
इतने में पाण्डव वीरों ने धृतराष्ट्र, भीष्मादिक सबको ।
जा चरणों में प्रणाम किया, पूछा कुशलादिक पुरजन को ॥
फिर धृतराष्ट्र की आज्ञा से वे गए सभी निजमहलों में ।
दुर्योधन-पत्नी भानुमती आई उल्लास भरे मन में ॥
उसने पांचाली की अगवानी की प्रेम से, गान्धारी ।
ने भी आशीष दिया उसको, फिर विदुर से बोली वह नारी ॥
"हे विदुर, पृथा को द्रुपदजा संग पाण्डु-भवन में ले जाओ ।
इनके सारे सामानों को भी उसी भवन में पहुँचाओ ॥"
कहकर तथास्तु तत्काल विदुर ने वैसी व्यवस्था कर दी ।
सब परिजन-पुरजन ने पाण्डव वीरों की तब सत्कीर्ति की ॥
फिर भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि ने किया अतिथि-सत्कार उनका ।
इन सभी कार्यों में नेतृत्व हुआ था विदुर महामति का ॥
कुछ काल कर लिया जब विश्राम महामति पाण्डव वीरों ने ।
तब बुलवाया उन बन्धुओं को धृतराष्ट्र और भीष्मजी ने ॥

बोले नृपति "हे कौन्तेय, मैं जो कुछ कहता उसे गुनो ।
मेरे वचनों पर दो ध्यान, मुझसे सुनीति के वचन सुनो ॥
मेरे निदेश से पाण्डु ने इस राज को तभी बढ़ाया था ।
वे थे अति ही बलवान उन्हें प्रजा-प्रेम मिल पाया था ॥
पर अब स्थिति भिन्न है कुछ, मेरे दुरात्मा पुत्र सभी ।
तुम से विग्रह करना चाहें, होगा न उन्हें सद्भाव कभी ॥
अतएव चले जाओ तुम सब खाण्डवप्रस्थ में वास करो ।
ले लो तुम आधा राज वत्स, अपने गुण का प्रकाश करो ॥"
फिर धृतराष्ट्र ने कहा विदुर से, "विदुर, विलम्ब नहीं लाओ ।
राज्याभिषेक की सारी सामग्रियाँ अभी तुम ले आओ ॥
मैं आज ही कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर का अभिषेक किया चाहूँ ।
पाण्डु ने राज दिया मुझको, मैं इसको आज दिया चाहूँ ॥"
श्रवण कर धृतराष्ट्र की बातें, भीष्म, द्रोण, विदुर सब ने ।
होकर प्रसन्न कहा, "शुभ हो, ऐसा ही चाहा था हमने ॥"
फिर बोले प्रभु यदुनाथ, "आपका यह विचार सर्वोत्तम है ।
शुभ कार्य शीघ्र करना अच्छा, ऐसा विबुधों का भी मत है ॥"
इतना कहकर प्रभु यादवेन्द्र ने दी प्रेरणा त्वरा हित ।
फिर किया विदुर ने कार्य पूर्ण सब जो अभिषेक हेतु समुचित ॥
उस काल पधारे व्यास महामुनि, सबने उनकी पूजा की ।
फिर उन्होंने प्रभु की सम्मति से धर्मनृप की प्रशस्ति की ॥
अभिषेक किया उनका उन्होंने, आशीर्वाद दिया सबने ।
"राजन्, सारी वसुधा का शासक बनो चाह की थी हमने ॥
वह हुई आज पूरी, अब करके राजसूय मख, यज्ञ-याग ।
तुम यशःश्री को प्राप्त करो, पाओ प्रजा से सुख-सुहाग ॥"
इस तरह किया सम्मानित सबने कुन्ती सुवन युधिष्ठिर को ।
फिर किया धर्मनृप ने अक्षय धन दान द्विज-अभ्यागत को ॥
उस काल चतुर्दिक जयजयकार की ध्वनि से नभ गूँजित था ।
सब हुए निमग्न हर्ष-मोद में, सबका दिल प्रफुल्लित था ॥
तदनन्तर नृप युधिष्ठिर होकर गजारूढ़ अति ही शोभित ।
धारण करके शुभ श्वेत छत्र करने लग गए जन-मन मोहित ॥

उनके पीछे थे प्रजावर्ग के लोग अनगिनत सजे-धजे ।
उस क्षण उनकी शोभा थी मानो सुरगण संग सुरराज सजे ॥
सारी हस्तिनापुरी की परिक्रमा की उन्होंने तत्क्षण ।
फिर किया प्रवेश राजधानी में, हर्षित थे सब जन-गण-मन ॥
उनके सब बन्धु-बान्धवों ने अभिनन्दन किया उन्हें उस क्षण ।
यह देख गान्धारी के पुत्रों को होने लग गई जलन ॥
अपने पुत्रों को शोक-मग्न जब धृतराष्ट्र ने जान लिया ।
तब कहा युधिष्ठिर से उस क्षण, "हे तात, जो तुमने प्राप्त किया ॥
यह राज अजित आत्मा पुरूषों के हित सर्वथा ही दुर्लभ है ।
तुम हो गए अब कृतार्थ, अतः अब करो वह जो समुचित है ॥
तुम आज ही खाण्डवप्रस्थ चले जाओ, बसाओ उस पुर को फिर ।
वह थी पहले भी राजधानी, पर अब जंगल से गई है घिर ॥
तुम पुनः बसाओ उस पुर को, अपने राष्ट्र का कर विकास ।
तेरे संग वहाँ चले जाएँगे, चतुर्वर्ण के लोग खास ॥
वह नगर समृद्धिशाली है, तुम बन्धुओं के संग चल जाओ ।
वह धन-धान्य से है समृद्ध, इसमें न जरा विलम्ब लाओ ॥"
राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा पा, करके प्रणाम सब कुन्तीसुत ।
चल पड़े प्राप्त कर राज अर्द्ध, पहुँचे, देखा वह वन अद्भुत ॥
वह महा भयंकर विजन विपिन था हिंस्र जन्तुओं से संकुल ।
यह देख क्षुब्ध हो गए कुन्ती सुत, कुन्ती भी हो गई आकुल ॥
तब देख उनकी यह दशा भक्तवत्सल प्रभु ने निज माया से ।
उस पुर को स्वर्गोपम बनवाया सुरशिल्पी विश्वकर्मा से ॥
वह महानगर कहलाया इन्द्रप्रस्थ, स्वर्ग-सा सुन्दर था ।
उसमें सुख से रहने लग गए पाण्डव, वह स्वर्गोपम पुर था ॥

चतुर्थ सर्ग

दोहा - धर्मराज का देख विभव, राजसूय के साज ।
दुर्योधन जा जनक ढिग, बोला, "कुशल न आज ॥"

"कुन्तीनन्दन की राजश्री को देख-देख मैं रोता हूँ ।
भोजन तो जरा न रुचता है, मैं सुख की नींद न सोता हूँ ॥
मैं होता जाता हूँ विवर्ण, तन कृश हुआ, मन हुआ खिन्न ।
उनके वैभव के आगे मैं लगता हूँ तात, अतिव विपन्न ॥
यदि मिला न उनका राज मुझे तो मैं न शान्ति पा सकता हूँ ।
मैं रण में जीत युधिष्ठिर को ही वह वैभव पा सकता हूँ ॥
अव युद्ध, युद्ध ही, युद्ध है केवल मेरा लक्ष्य, न कुछ भी अन्य ।
या तो मैं रण में जीतूँगा, या वीर गति पा होऊँ धन्य ॥
इस जीवन में क्या सुख मुझको, दिन-रात जलन बढ़ती जाती ।
दुश्मन मेरे दिन-दिन वढ़ते, पर मेरी शक्ति न बढ़ पाती ॥"

दुर्योधन के वचनों को सुनकर वोला शकुनि, "दुर्योधन ।
मैं एक तन्त्र वतला सकता, जिससे प्राप्त हों वे साधन ॥
मैं विशेषज्ञ हूँ द्यूतकर्म का, पण का मुझे विशेष ज्ञान ।
कुन्तीनन्दन हैं द्यूतप्रिय, यद्यपि वे हैं इसमें अजान ॥
जो उन्हें निमन्त्रण मिले द्यूत का, वे अवश्य ही आयेंगे ।
तव मैं छल कर जीतूँगा उनको, वे सव विभव गँवायेंगे ॥
दुर्योधन, तुम वुलवाओ उनको, करो शीघ्रता, क्या विलम्ब ।"

शकुनि के ऐसा कहने पर दुर्योधन बोला हो प्रसन्न ॥
"हे पिताश्री, मामा द्यूत के विशेषज्ञ हैं, उत्साही ।
वे राज युधिष्ठिर का हर लेंगे, होगी मेरी मनचाही ॥
अतएव इन्हें आदेशित करिए, कुन्तीसुत को बुलवाकर ।
होवे द्यूत क्रीड़ा तत्क्षण, होगा विलम्ब से गुड़ गोबर ॥"

दुर्योधन के वचनों को सुनकर वोले धृतराष्ट्र, "तात ।
हैं विदुर महामति मेरे सचिव, वुलाओ, उनसे करके वात ॥
मैं समझ सकूँगा उचित क्या, वे दूरदृष्टि, धर्मज्ञ वड़े ।
वे हित की वातें वतलाएँगे, कहेंगे सव कुछ खरे-खरे ॥"
दुर्योधन बोला, "नहीं, नहीं, जो विदुर यहाँ पर आएँगे ।
तब हो न पाएगा द्यूत कर्म, वे अनुचित इसे वताएँगे ॥
यदि आपने इससे मुख मोड़ा तो मैं त्याग दूँगा प्राण ।
फिर आप विदुर संग रह करके करिएगा राज सहित सम्मान ॥"
दुर्योधन के सुन मर्म वचन, राजा उसके मत में आए ।
उन्होंने विदुर को वुलवाया, फिर अपने निश्चय वतलाए ॥
बोले यह सुनकर विदुर महामति, "मैं इस निश्चय के विरूद्ध ।
यह द्यूतकर्म विग्रहकारक, इससे न कहीं हो जाए युद्ध ॥"
सुन करके मत मतिमान विदुर का, धृतराष्ट्र वोले, "कैसे ।
तुम कहते हो विग्रह होगा, हैं पाण्डुसुवन नहीं वैसे ॥
यदि देवों की कृपा होगी तो कलह नहीं हो पाएगा ।
तुम व्यर्थ कर रहे हो शंका, कुछ मनोविनोद हो जाएगा ॥
अब अशुभ या शुभ, हित या अनहित जो हो द्यूत ही होना है ।
यह बन्धु-बान्धवों की क्रीड़ा, इसमें किसको क्या खोना है ॥
जब मैं, आचार्य, भीष्म, तुम सभी निकट रहेंगे तब कैसे ।
हो पाएगा अन्याय बन्धु, यह काम है होना, हो जैसे ॥
तुम जाओ खाण्डवप्रस्थ अभी, लाओ कुन्तीसुत को तत्क्षण ।
पर कहना नहीं युधिष्ठिर को यह द्यूत का ही है आमन्त्रण ॥"
श्रवण कर धृतराष्ट्र की बातें विदुर हो गए खिन्न बहुत ।
पर चले सवार हो रथ पर जहाँ विराज रहे थे कुन्तीसुत ॥
सुनकर आगमन विदुरजी का आगे आ करके धर्मराज ।
अभिवादन कर बोले, "चाचाजी, लगते आप विषण्ण आज ॥
कुशल तो है ? बूढ़े राजा तो सकुशल हैं ? क्यों आप मलिन ?
कहिए, क्या है आज्ञा, मैं क्या करूँ ?" सुन बोले विदुर खिन्न ॥
"हे धर्मराज, हैं महाराज धृतराष्ट्र स्वस्थ, सकुशल सभी ।
उन्होंने तुमको द्यूत क्रीड़ा हेतु वुलाया, तात, अभी ॥

हैं वहाँ अनेकों द्यूत कर्म विशेषज्ञ शकुनि जैसे ।
हमको होता है दुख, तुम उनसे द्यूत में जीतोगे कैसे ?
यह द्यूत मूल है, सकल अनर्थों का, मैं इसके था विरूद्ध ।
तौभी भेजा है धृतराष्ट्र ने, भाव हैं उनके घोर अशुद्ध ॥
वे लोग द्यूत में छल करके तेरा वैभव हरना चाहें ।
वे तुमको राज सिंहासन से भी च्युत आज करना चाहें ॥
अब जो तुमको लगता श्रेयस्कर, करो तात, तुम वही कर्म ।
मैंने तुमको सब कुछ बतलाया क्या द्यूत का यहाँ मर्म ॥"
श्रवण कर विदुर की बातें बोले धर्मराज होकर चिन्तित ।
"मैं द्यूत कर्म को नहीं चाहता, यह कर्म है अति गर्हित ॥
है किन्तु बुलाया महाराज ने, इस कारण मैं जाऊँगा ।
जब मुझे निमन्त्रण आया है, मैं पीछे नहीं हट पाऊँगा ॥"
इस तरह दैव के वश में होकर धर्मराज परिवार सहित ।
चल पड़े हस्तिनापुर को यद्यपि भीतर से वे थे चिन्तित ॥
जब पहुँच गए वे द्यूत कक्ष में तब शकुनि से कर विवाद ।
अनुचित कहकर भी द्यूत कर्म को, लगे खेलने कर विषाद ॥
अब क्या था, शकुनि के छल से वे लगे हारने मणि, रथ, धन ।
दासों-दासों-शूरों-वीरों को भी जब हार गए तत्क्षण ॥
तब विदुर महामति ने उठ कर जा धृतराष्ट्र से कहा, "प्रभो ।
मैं कुछ कहना अब चाह रहा, हो रहा है महा अधर्म विभो ॥
जैसे मुमूर्षु को ओषधि अच्छी नहीं है लगती उसी तरह ।
मेरी बातें भी आप सभी को नहीं लगेंगी भली, अहह ॥
फिर भी मैं कुछ कह रहा आज, इसको अब सब गुनिए मन में ।
अन्यथा अनर्थ यहाँ घटने को है अब ही इसी क्षण में ॥
यह पापी दुर्योधन कुरु कुल का अब कर डालेगा विनाश ।
यह द्यूत के मद में हो उन्मत्त न लख पाता कुल का ह्रास ॥
यह महारथी पाण्डव बन्धुओं से कर विरोध नहीं बच सकता ।
यह सारे कुल को नष्ट करेगा, खतरा अब नहीं टल सकता ॥
अब आप करें बन्दी इसको तब ही कौरव कुल बच सकता ।
अन्यथा आप डूबेंगे शोक-समुन्दर में मैं हूँ कहता ॥

यह द्यूत कर्म है मूल कलह का, यह फूट का कारण है ।
शकुनि को कहिए जाए यहाँ से, भय का तभी निवारण है ॥"
श्रवण कर विदुर की हितकर बातें, दुर्योधन उल्टे बिगड़ा ।
वह कहने लगा क्रुद्ध होकर, "हे विदुर, न तुमको शर्म जरा ॥
तुम शत्रु पक्ष की शंसा करते, मुझको धता बताते हो ।
जिस पत्तल में तुम खाते हो, उसमें ही छेद बनाते हो ॥
तुम हो मेरे विद्वेषी, तुमको पाण्डुसुतों से है प्रेम ।
तो जाओ उनके पास रहो, देखो उनका ही कुशल-क्षेम ॥"
दुर्योधन के दुर्वचनों को सुन बोले विदुर सकोप वचन ।
"दुर्योधन, तेरी बुद्धि मन्द, है व्यर्थ तुम्हारा आरोपण ॥
तुम केवल चिकनी-चुपड़ी बातें ही जब सुनना चाह रहे ।
तब लो सलाह चापलूसों से, हम तो धर्म निबाह रहे ॥
हितकर होने पर भी कटु वचनों के श्रोता-वक्ता दुर्लभ ।
अतएव कह रहे हम यह सब जिसमें तेरा कल्याण सुलभ ॥
जिससे तुमको हो यश-सम्पत्ति प्राप्त वही बतलाते हम ।
पर तुमको जो अनुचित लगता, तो लो अब ही चल जाते हम ॥"
कहकर ऐसा जब विदुर चले तब द्यूत कर्म आरम्भ हुआ ।
फिर लगे हारने धर्मराज कुछ ऐसा कपट-प्रबन्ध हुआ ॥
धन तो क्या अपने अनुजों को भी वे जूए में गए हार ।
भाई तो भाई पत्नी को भी किया दाँव पर जब निसार ॥
तब "धिक् धिक्" कहने लगे सभासद-भीष्म-द्रोण हुए व्यथित ।
उनके तन से लग गया पसीना चलने, सब हो गए चिन्तित ॥
विदुर तो अपने सिर को थामे हो गए संज्ञा-शून्य तभी ।
लग गए सभासद दीर्घ सांस लेने, कर मलने लगे सभी ॥
पर धृतराष्ट्र, दुःशासन, कर्ण बड़े हर्षित होने लग गए ।
इतने में शकुनि बोल उठा, "हम यह दाँव भी जीत गए ॥
उसने पासों को उठा लिया था, विजय-हर्ष से वह उन्मत ।
तब दुर्योधन बोला सगर्व "हे विदुर, सुनो मेरा अभिमत ॥
तुम जाकर पाण्डुसुतों की प्यारी पत्नी कृष्णा को लाओ ।
वह हो गई अब दासी मेरी, उसको तुम यहीं ले आओ ॥

वह मेरे प्रासाद में झाड़ू अभी लगाए आ करके ।
रहना होगा उसको अब मेरी अनुचरियों संग जा करके ॥"
श्रवण कर धृष्ट वचन दुर्योधन के बोले मतिमान विदुर ।
"ओ मूर्ख, तेरे जैसे दुष्टों के ही लायक ये वच निष्ठुर ॥
तू काल-पाश से बँधा हुआ है, इससे कुछ न समझ पाता ।
तू होकर मृग शार्दूलों को सदा ही ऐसे भड़काता ॥
तू उनका कोप बढ़ाए नहीं, यमलोक जाने को क्या उद्यत ।
द्रौपदी न दासी हो सकती है, सुन ले तू मेरा अभिमत ॥
जब हार गए खुद को पहले ही धर्मराज, तब रखा दाँव ।
तब द्रौपदी कैसे हारी गई, अनुचित है यह प्रस्ताव ॥
है मौत नाचती तेरे सिर, पर तुझको इसका पता नहीं ।
इस कारण तू मेरी हितकर बातों को भी सुनता नहीं ॥
कुलकल को नष्ट कराएगा, रे दुष्ट, राज यह जाएगा ।
तू मेरी बातें नहीं मानकर अन्त काल पछताएगा ॥"
श्रवण कर विदुर की बातों को बोला दुर्योधन कोप सहित ।
"हे प्रातिकामी, तू ही जा अब, लाए कृष्णा को यही उचित ॥
ये विदुर कापुरुष, इसी तरह की बातें सर्वदा करते हैं ।
ये मेरी वृद्धि नहीं चाहें, कुन्तीपुत्रों से डरते हैं ॥"
वह प्रातिकामी दुर्योधन के वचनों को सुन गया सही ।
पर लौट आया, तब दुर्योधन ने दुःशासन को आज्ञा दी ॥
"दुःशासन, अब तुम ही जाओ, बलपूर्वक कृष्णा को लाओ ।"
दुःशासन अग्रज की बातें सुन चला, कहा द्रुपद्रजा को ।
"पांचालि, चलो अब मेरे संग तुम राजसभा में, हो दासी ।
तुम करो कौरवों की सेवा, तेरे सब पति सत्यानाशी ॥"
द्रौपदी के चिल्लाने पर भी बलपूर्वक उसके केश पकड़ ।
दुःशासन लाया उसे सभा में बोली कृष्णा दीन स्वर ॥
"मैं क्या जूए में जीती गई ?" पर कोई भी नहीं बोल सका ।
उस सभा में सन्नाटा छाया था, गुत्थी कोई न खोल सका ॥
तब ही बोला राधेय कर्ण, "क्या देख रहा तू दुःशासन ।
अब ही निर्वस्त्र करो कृष्णा को दासी है यह अब इस क्षण ॥"

तब दुःशासन उस भरी सभा में द्रुपदजा का एक वसन ।
बल सहित पकड़कर लगा खींचने अद्‌भुत दृश्य हुआ तत्क्षण ॥
आँचल से मुँह ढँक रोने लग गई पाँचों पतियों की प्यारी ।
कोई न रोकता दुःशासन को, थी स्तब्ध सभा सारी ॥
तब कृष्णा ने तत्क्षण स्मरण किया प्रभु का, "हे विश्वात्मन् !
हे गोविन्द, हे द्वारकानाथ, अब अबला का करिए रक्षण ॥"
द्रौपदी की करुण पुकार श्रवण कर उसके वस्त्र में अन्तर्हित ।
होकर प्रभु ने वर वसनों से कर डाला उसको आच्छादित ॥
ऐसा तब था दृश्य अद्‌भुत, विस्मित थी देख सभा सारी ।
था पता न चलता साड़ी की नारी कि नारी की साड़ी ॥
नाना विधि के वर वसनों से भर गया तुरत वह सभा भवन ।
दुःशासन हार गया पर हर न सका कृष्णा का एक वसन ॥
उसके बलिष्ठ भुजदण्ड थके, हो गया स्वेद से वह लथपथ ।
तब होकर शर्मसार वह पापी उस कृत्य से हुआ विरत ॥
उस काल वहाँ होने लग गया कोलाहल तभी सभासदगण ।
दुःशासन की निन्दा करने लग गए, कृष्णा का नन्दन ॥
तब बोले विदुर महामति, "सुनिए, जितने यहाँ सभासदगण ।
द्रौपदी के प्रश्नों का उत्तर अब तक न मिला है, क्या कारण ?
जो भय या लोभ के वशीभूत हो करते नहीं सत्यभाषण ।
उनका अनिष्ट निश्चय होता, ऐसा कहते हैं विद्वज्जन ॥
अतएव आप सब अपने मत का करें यहाँ प्रकाश अभी ।
अन्यथा मौन धारण का फल हो सकता सत्यानाश कभी ॥"
श्रवण कर विदुर की बातों को वृकोदर बोले कोप सहित ।
"ये जितने यहाँ सभासदगण, कर रहे सभी अब हैं अनुचित ॥
कोई भी धर्म की बात न करता", तब बोले गंगा नन्दन ।
"इस काल युधिष्ठिर ही जो कह देंगे वह होगा आप्तवचन ॥"
पर धर्मराज को कुछ न बोलते देख के बोले पुनः भीम ।
"ये धर्मराज ही मेरे प्रभु हैं, इनके कारण दुख असीम ॥
इन्हीं के कारण हम सब दास हुए, हम सब हैं पराधीन ।
अन्यथा आज मैं इस धरती को कर ही देता कुरूविहीन ॥

मैं धृतराष्ट्र के इन पापी पुत्रों को मार गिरा देता।
उसको मैं यमपुर देता पठा जो कि कृष्णा को छू लेता ॥"
वृकोदर की बातें श्रवण कर धृतराष्ट्र बोले दुःख से ।
"रे मन्दबुद्धि दुर्योधन, तेरा नाश निकट इस अपयश से ॥
आओ बेटी कृष्णे, तुम हो गईं मुक्त, सर्वथा स्वाधीन।
तेरे सब पति भी मुक्त हुए, अब रहा न कोई पराधीन ॥
सब ले लो धन जो हार गए तेरे पति, तुम सब चल जाओ ।
जैसे शासन करते थे तुम सब, वैसे ही सब कर पाओ ॥"
श्रवण कर धृतराष्ट्र की वाणी चले वहाँ से धर्मराज ।
पर दुर्योधन ने पुनः कहा निज जनक से, "सुनिए महाराज ॥
सब गुड़ गोबर कर दिया आपने राज उन्हें लौटा करके ।
मैं हूँ चिन्तित वे पाण्डुपुत्र मारेंगे हमको रण करके ॥
मैं हूँ अति भीत इसी चिन्ता से, चाहे जिस विधि से होए ।
उनका विनाश करना है अब, होनी जो होनी है होए ॥
बुलवाएँ, उनको पुनः द्यूत क्रीड़ा हो, और अगर हारें ।
तो वन में जाकर वास करें, बारह वर्षों तक झख मारें ॥"
इस तरह पुत्र की बातें सुन धृतराष्ट्र ने उसके मत में आ ।
बुलवाया पाण्डव वीरों को, फिर हुई जो तब द्यूत-क्रीड़ा ॥
पाण्डव सब हार गए, वन में जाने को जब वे थे तत्पर ।
तब विदुर महामति ने धर्मनृप से कहा, "सुनो हे कुरूप्रवर ।
ये आर्या कुन्ती वयोवृद्ध है, वन में जाने के अयोग्य ।
ये रहेंगी मेरे ही घर में, पायेंगी सारे साज भोग्य ॥
तुम सबका हो कल्याण, मनाओ जंगल में मंगल वीरो ।
तुम रहो विरूज सर्वदा सुखी, आशीष यही मेरा धीरो ॥
श्रवण कर विदुर-वचन पाण्डवगण द्रोण-भीष्म को कर प्रणाम।
चल पड़े वहाँ से वन को संग में थी कृष्णा नारी ललाम ॥

पंचम सर्ग

वनवास भोग कर पाण्डुपुत्र सब लौटे जब अपने पुर को ।
तब धर्मराज ने धृतराष्ट्र के ढिग भेजा प्रभु यदुवर को ॥
आए हस्तिनापुरी में जब प्रभु यादवनन्दन ले संदेश ।
उनके स्वागत हित दुर्योधन ने किए बहुत प्रबन्ध विशेष ॥
उसने चाहा था राज-भोग से तुष्ट करे यदुनन्दन को ।
अतएव कहा, "हे यदुवर, स्वीकारें मेरे आमन्त्रण को ॥
मैंने तैयार किए भोजन के राजभोग सारे यथेष्ट ।
मुझको अनुगृहित करें आप, ग्रहण कर उनको यदुश्रेष्ठ ॥"
सुनकर दुर्योधन के वचनों को बोले तब प्रभु घनश्याम ।
"दुर्योधन, मैं आया हूँ लेकर पाण्डव के कुछ खास काम ॥
उनको पूरा जब तक न करूँ, तेरा आमन्त्रण अस्वीकार ।
अतएव मुझे तुम क्षमा करो, मेरे सिर पर है बड़ा भार ॥"
सुनकर यदुवर के वचनों को बोला दुर्योधन दर्प सहित ।
"मैंने तैयार किए हैं सारे राजभोग जो आपके हित ॥
कहिए, उन सबका क्या होगा, फिर कौन यहाँ इस नगरी में ।
जिसका आतिथ्य करेंगे ग्रहण आप भला इस जल्दी में ॥
है आपका और कौन सम्बन्धी जो प्रबन्ध करे विशेष ।
इस नगर में भला और को है जिसको देवेंगे अब क्लेश ॥
हैं मेरे घर में छप्पन व्यंजन, राजभोग सुस्वादु परम ।
वैसा प्रबन्ध कहाँ होगा-है आपको क्यों हो रहा भरम ॥"

सुन दुर्योधन के दर्प सहित इन वचनों को, बोले प्रभुवर ।
"दुर्योधन, तू क्या समझ सकेगा जैसा यह आया अवसर ॥
तुझको ज्ञात है किसका आमन्त्रण स्वीकार्य, उचित होगा ?
फिर क्यों व्यर्थ ही मुझे निमन्त्रित कर अपनी वाणी खोता ?
सुन ले मैं आज बताता हूँ - किसका आमन्त्रण स्वीकार्य ।
किसका होता है अस्वीकार्य- वह भी मुझसे सुन ले अनार्य ॥
कोई दो स्थितियों में ही करता है किसी का अन्न ग्रहण ।
या तो प्रेम से देता हो कोई भोजन हित आमन्त्रण ॥
या विपद् काल में जिस-तिस का भी अन्न कोई करता ग्रहण ।
बोलो, इन दोनों में क्या है जो मैं स्वीकारूँ आमन्त्रण ॥
मैं जान रहा हूँ मुझसे तुमको जरा प्रेम का भाव नहीं ।
मैं हूँ न विपद् में, मेरे मित्रों का भी यहाँ अभाव नहीं ॥
तू मुझे दिखाता राजभोग - मुझको कुछ उनकी चाह नहीं ।
मैं तो भावों का ग्राहक हूँ, भोगों की कुछ परवाह नहीं ॥
है जहाँ भाव का नहीं अभाव, भोजन भी वहीं होता रुचिकर ।
पर हो अभाव जो प्रेम भाव का वहाँ ठहरना भी दूभर ॥
मैं वहाँ जा रहा जहाँ मेरे हित कोई नयन बिछाए है ।
मैं वहीं करूँगा ग्रहण सभी कुछ, तू क्यों टाँग अड़ाए है ॥
पहले सीखो कुछ नियम निमन्त्रण के, फिर देना आमन्त्रण ।
यह प्रीति-नीति की वात सीख लो, व्यर्थ न भरमो, दुर्योधन ॥
इतना कहकर दुर्योधन को, कर अस्वीकार निमन्त्रण को ।
चल पड़े विदुर के घर को प्रभुवर देख प्रेम के बन्धन को ॥"

× × ×

वह विदुर की पत्नी प्रेम-पगी सुनती रहती प्रभु-गुण-वर्णन ।
वह सोच रही थी कब देखूँगी मैं प्रभु के अभिराम वदन ॥
वह उठती थी उनका ध्यान धर, सोती कर उनका ध्यान ।
निशि-दिन मतवाली प्रभु-प्रेम में करती रहती गुण का गान ॥
उसकी साधना पूर्ण होने को देख लो आज चली आई ।
वह खींच के, देखो, प्रेम-डोर में परम आत्मा को लाई ॥
है आज प्रात से ही पुलकित-हर्षित मतवाली वह नारी ।
वह रोती है या गाती है जाने वही पगली बेचारी ॥
उसके श्रवण में खबर मिली आए हैं पुर में श्यामसुंदर ।
वह सोच रही थी आएँगे क्या करुणामय भी मेरे घर ॥
मुझ-सी अकिंचना नारी के घर आएँगे वे चरण कमल ?
ओ हो, मैं पगली क्या सोचती, होगी मेरी आस सफल ?
देखो वह पगली गाती है या रोती है कुछ पता नहीं ।
है वह नाचती, द्वार देखती, क्या करती कुछ ज्ञात नहीं ॥

गीत

वह विलोको आ रहा है आज मेरे द्वार कोई ।
सत्य होगा आज रे मन, स्वप्न का संसार कोई ॥
दिल धड़कता, नयन फड़कें, अंग-अंग पुलकित हुए हैं ।
बह रही हो मरु में जैसे विमल जल की धार कोई ॥
आज कागा बोलता है, डोलती पुरवाई कैसी ।
गा रही है बाँसुरी कानों में राग मल्हार कोई ॥
छा रहे बादल गगन में, मैं भी क्या डोलूँ मगन में ।
आज बरसाएँगे ये घन स्नेह-सिक्त फुहार कोई ॥

× × ×

आज भक्त के द्वार पे स्वयं आए हैं भगवान, देखो कितना प्रेम महान।
दुर्योधन के मेवा त्यागे, वहाँ से बढ़े दयामय आगे ।
पहुँचे जहाँ विदुरजी का था अपना वास-स्थान ॥ देखो.....
सदा यही होता आया है, यह सब उनकी ही माया है ।
भक्ति-पाश में बँधकर आते रहते दयानिधान ॥ देखो.....
चाहे गज हो, या शबरी हो, या जटायु हो, या कुबड़ी हो ।
सब की सुध लेते हैं प्रभुजी, यह है उनकी आन ॥ देखो....
वह सब की सुननेवाला है, परम दयालु मुरलीवाला है ।
सब्र जरा कर, कर प्रतीक्षा, सदा तू रे इन्सान ॥ देखो.....
जब भक्तों पर भीर पड़ी है, तब प्रभु की करुणा उमड़ी है ।
देखो, द्रौपदी की प्रभु ने रखी थी कैसे शान ॥ देखो.....

× × ×

वह विदुरानी बौरी-सी इधर-उधर को कबसे डोल रही ।
वह रोती थी, वह गाती थी, वह स्वतः कुछ-कुछ बोल रही ॥
वह थी विह्वल, मदमाती थी, वह प्रभु-प्रेम-रंगराती थी ।
वह बाट देखती थी प्रभु की, कभी आती थी, कभी जाती थी ॥
प्रतीक्षा करती हार गई, तब सोचा कि स्नान करूँ ।
फिर पूजा करूँ श्यामसुन्दर की, बैठ के उनका ध्यान धरूँ ॥
ऐसा विचार वह वर नारी स्नान लगी करने जिस क्षण ।
उस काल द्वार पर दस्तक आया, चौंक पड़ी पगली तत्क्षण ॥
बोले प्रभु, "विदुरजी खोलें द्वार, कृष्ण आज भूखा आया ।"
सुनते ही विदुरानी को जैसे सारे तन में कम्प छाया ॥
वह करती थी स्नान नग्न हो, इसका रहा नहीं ध्यान ।
वह नंगी ही दौड़ी आई, खोला द्वार हो अनवधान ॥

उसको निज वसन पहिरने का भी जरा नहीं तब ख्याल रहा ।
वह दौड़ी कि प्रभु लौट न जाएँ इससे ऐसा हाल रहा ॥
खोला द्वार जब उसने, देखा घनश्याम अभिराम वदन ।
प्रभु ने उसके तन पर फेंका अपना वह सुन्दर पीत वसन ॥
वह पगली सुध-बुध खो बैठी, हक्की-बक्की हो रही खड़ी ।
वह देख रही इक टक प्रभु की छवि, देख ये बोले श्रीहरी ॥
"मैं आज तुम्हारे दर पै भोजन की इच्छा लेकर आया ।
सुभगे, तू मुझे खिला कुछ भी, मैं भूख से अति ही अकुलाया ॥"
प्रभु की वाणी सुनकर पगली दौड़ी-दौड़ी आँगन में आ ।
कुछ केले तोड़ लिए उसने, प्रभु को पीढ़े पर बिठलाया ॥
वह लगी छीलने केलों को, गुद्दे को फेंकती जाती थी ।
प्रभु को छिलके देने लग गई, वह फूली नहीं समाती थी ॥
प्रभु बड़े प्रेम से केलों के छिलकों को खाए जाते थे ।
कहते थे, "कितने हैं मीठे," गुण गाते नहीं अघाते थे ॥
जब इधर सुना मतिमान विदुर ने आए घर पर श्यामसुंदर ।
वे दौड़े-दौड़े आए घर, देखा प्रभु को तब भोजन पर ॥
यह देख हुए वे क्षुब्ध बड़े, पत्नी छिलके देती जाती ।
गुद्दे को फेंक रही थी वह, पगली-सी रह-रह मुस्काती ॥
उसकी गति-मति यह देख विदुर ने कहा, "अरी पगली, रूक जा ।
तू गुद्दे को है फेंक रही प्रभु को छिलके ही रही खिला ॥"
जब कहा विदुर ने ऐसा तब वह होश में आई मतवाली ।
वह गुद्दे जब देने लग गई, बोले उससे प्रभु वनमाली ॥
"बस बस कर, मैं संतुष्ट हुआ, अब और नहीं कुछ भी चाहूँ ।
मुझको प्रेम ही भोजन है, वस्तु को मैं न जरा चाहूँ ॥

ये विदुर ज्ञानी भक्त बड़े, पर तू प्रेम मतवाली है ।
तेरी ही भक्ति है मान्य मुझे, तुझ पर प्रसन्न वनमाली है ॥
तूने संतुष्ट किया मुझको मैं और नहीं कुछ चाह रहा ।
मैं भाव ही ग्रहण करता हूँ बस अपना टेक निबाह रहा ॥
जो जल-फल-पत्र-पुष्प आदि मुझको प्रेम से देता है ।
वह ही मैं ग्रहण करता हूँ, वह मुझको ही ले लेता है ॥
मुझको न वस्तु से प्रेम जरा, मैं भाव देखता रहता हूँ ।
वस प्रेम-भाव ही ग्रहण करता और न मैं कुछ कहता हूँ ॥"
सुनकर प्रभु-वाणी गुरू-गंभीर आश्वस्त हुए दम्पति दोनों ।
प्रभु ने ग्रहण आतिथ्य किया इससे पुलकित थे वे दोनों ॥
उन दोनों की चिर संचित अभिलाषा पूरी हो गई आज ।
जीवन उनके कृतार्थ हुए जीवन-धन ही मिल गए आज ॥
जीवन का फल है प्रेम, और प्रभु की प्राप्ति है इसका फल ।
है सार यही जीवन का, जीवन प्रेम-भक्ति से हुआ सफल ॥

समाप्त